इसे तत्काल प्रकाशित कर सकते हैं

Website : www.eklavya.in

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

विज्ञान समाचार

ई-सिगरेट कैंसर पैदा कर सकती हैं

अमेरिकन एसोसिएशन फॉर कैंसर रिसर्च की सालाना मीटिंग 6 अप्रैल को कैलिफोर्निया में हुई थी। इस मीटिंग में शोधकर्ताओं ने बताया कि उन्होंने मनुष्यों की श्वसन कोशिका में हो रहे म्यूटेशन का अध्ययन किया। ये म्यूटेशन्स ऐसे ऐसे धूम्रपानी व्यक्तियों में पाए जाते हैं जिन्हें फेफड़ों के कैंसर का खतरा होता है। इन कोशिकाओं को ऐसे कल्चर माध्यम में पनपाया गया था जिसमें इलेक्ट्रॉनिक (ई) सिगरेट से निकली वाष्प मिली थी। इन कोशिकाओं के जीन्स की अभिव्यक्ति की तस्वीर बनाई गई।

शोधकर्ताओं ने पाया कि जब कोशिकाओं को ई-सिगरेट की वाष्प घुले माध्यम में पनपाया गया तो जीन्स का व्यवहार वैसा ही रहा जैसा तंबाकू के धुएं में पनपती कोशिकाओं में होता है। इस अध्ययन के शोधकर्ता बोस्टन युनिवर्सिटी के जीनोमिक्स और फेफड़ों के कैंसर पर काम कर रहे एवरम स्पायरा का कहना है कि दोनों का पैटर्न हूबहू एक जैसा तो नहीं है लेकिन इनमें कुछ गौरतलब समानताएं हैं। उनकी टीम अब यह देखने की कोशिश कर रही है कि क्या कोशिका के व्यवहार में यह परिवर्तन उन्हें कैंसर कोशिका का रूप दे रहा है।

शोध कार्य अभी प्रारंभिक चरण में है और इसके आधार पर यह तो नहीं कहा जा सकता कि ई-सिगरेट शरीर में तो क्या, परखनली में भी कैंसर पैदा कर सकती है। हो सकता है कि ये तंबाकू से ज़्यादा सुरक्षित हों लेकिन हाल के अध्ययन से लगता है कि ये शरीर के हित में तो कदापि नहीं हैं।

ई-सिगरेट विवादास्पद रही हैं। इनमें तंबाकू को जलाने की बजाय तरल निकोटिन को वाष्प में बदला जाता है। इसलिए कुछ शोधकर्ताओं को लगता है कि ई-सिगरेट धूम्रपान की वजह से स्वास्थ्य पर होने वाली क्षति को कम करती है। अन्य लोगों का मत है कि ई-सिगरेट मात्र धूम्रपान को नया रूप दे रही हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इसे तत्काल प्रकाशित कर सकते हैं

Website : www.eklavya.in

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

विज्ञान समाचार

शुक्राणु और अंडे के मिलन का प्रोटीन

वैज्ञानिक अंततः वह प्रोटीन खोजने में सफल हो गए हैं जो प्रजनन के दौरान शुक्राणु को अंडे से जुड़ने में मदद करता है। इसका मतलब है कि यह प्रोटीन गर्भ धारण के लिए ज़रूरी है।

नेचर में प्रकाशित इस शोध का निर्देशन वेलकम ट्रस्ट सैंगर इंस्टीट्यूट के गेविन राइट ने किया। दरअसल 2005 में शुक्राणु की सतह पर इज़ुमो-1 नामक एक प्रोटीन खोजा गया था। राइट व उनके साथी इस प्रोटीन का अंडे पर पाया जाने वाला समकक्ष प्रोटीन खोज रहे थे। वैज्ञानिक जानते थे कि इज़ुमो-1 शुक्राणु को अंडे से जुड़कर निषेचन की क्रिया शुरू करने में मदद करता है। मगर यह स्पष्ट नहीं था कि यह प्रोटीन अंडे की सतह के किस प्रोटीन से जुड़ता है।

इन प्रोटीन्स को पहचानने में एक दिक्कत यह रही है कि ये एक-दूसरे से बहुत दुर्बल ढंग से जुड़ते हैं। लिहाज़ा, राइट और उनके साथियों ने इज़ुमो-1 प्रोटीन के झुंड बनाए और यह देखने की कोशिश की कि संवर्धन माध्यम में ये अंडे की कोशिका के किस प्रोटीन से जुड़ते हैं।

इस तकनीक का उपयोग करते हुए शोधकर्ताओं ने चूहे की अंडा कोशिका की सतह पर मौजूद फोलेट ग्राही क्रमांक 4 प्रोटीन को खोज निकाला। अब वे इसका नाम उर्वरता के रोमन देवता के नाम पर जूनो रखना चाहते हैं।

राइट के दल ने पाया कि जूनो मनुष्यों में भी पाया जाता है और इसकी अनुपस्थिति में शुक्राणु अंडे से नहीं जुड़ पाता। जिन मादा चूहों में जूनो नहीं था वे स्वस्थ होते हुए भी प्रजनन नहीं कर पाती थीं। अर्थात जूनो-इज़ुमो-1 की जोड़ी प्रजनन की दृष्टि से अनिवार्य है।

इतना ही नहीं, राइट की टीम ने यह भी देखा कि जूनो एक भूमिका और अदा करता है - जब एक शुक्राणु किसी अंडे का निषेचन कर देता है तो जूनो अन्य शुक्राणुओं को उस अंडे से जुड़ने से रोकता है। जैसे ही अंडे का निषेचन होता है, उसकी सतह से जूनो नदारद हो जाता है। ऐसी स्थिति में अन्य शुक्राणु उस अंडे से नहीं जुड़ पाते।

राइट का मत है कि उनकी इस खोज का उपयोग संतानहीनता के उपचार में हो सकता है। जिन स्त्रियों को संतान पैदा करने में दिक्कत है, उनकी जांच करके पता लगाया जा सकता है कि कहीं जूनो की अनुपस्थिति की वजह से तो ऐसा नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में शुक्राणु को इंजेक्शन की मदद से सीधे उनके अंडाणु में पहुंचाया जा सकता है। दूसरी ओर इसी खोज का उपयोग करके गर्भ निरोध के नए उपाय भी विकसित किए जा सकेंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इसे तत्काल प्रकाशित कर सकते हैं **Website : www.eklavya.in**

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

विज्ञान समाचार

तारा एक लेंस जैसे काम करता है

हमारी पृथ्वी से 2600 प्रकाश वर्ष दूर दो जुड़वां तारे हैं। ये तारे लायरा नामक तारामंडल में स्थित हैं और इनमें से एक तारा दूसरे के प्रकाश को किसी लेंस की तरह मोड़ता है।

नासा के अंतरिक्ष यान केप्लर से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर वाशिंगटन विश्वविद्यालय के एथान क्रूस और एरिक एगोल ने पाया कि हर 88 दिन में जोड़ी के बड़े तारे की चमक में करीब 0.1 प्रतिशत की वृद्धि होती है। यह वृद्धि 5 घंटे के लिए होती है। उनका कहना है कि इस तारे के आसपास एक दूसरा तारा चक्कर काट रहा है। वह दूसरा तारा एक घना मगर अपना ईंधन समाप्त कर चुका सफेद बौना तारा है। जब यह बौना तारा चक्कर काटते-काटते चमकीले तारे और पृथ्वी के बीच आता है तो चमकीले तारे की चमक में वृद्धि होती है।

आइंस्टाइन ने 1915 में भविष्यवाणी की थी कि विशाल पिंड अपने आसपास के समय-काल में विकृति पैदा करते हैं। इस वजह से उनके पास से गुज़रता प्रकाश भी मुड़ जाता है। इस प्रभाव को गुरुत्व लेंस प्रभाव कहते हैं। दूसरे शब्दों में, ऐसे विशाल पिंड एक लेंस की तरह काम करते हैं। यदि दूर बैठा कोई प्रेक्षक ऐसे 'गुरुत्व लेंस' के पीछे स्थित किसी वस्तु को देखे तो उसे एकाधिक बिंब दिखाई पड़ते हैं। मगर ये बिंब इतने पास-पास होते हैं कि इन्हें अलग-अलग नहीं देखा जा सकता। तब हमें सिर्फ यह आभास होता है कि उस वस्तु की चमक थोड़ी बढ़ गई है।

1971 में डगलस ह्यूब और क्लेमेंट लीबोविट्ज़ ने दर्शाया था कि यदि दो तारे एक-दूसरे के चक्कर काट रहे हों, तो वे पृथ्वी के साथ एक सीध में आने पर गुरुत्व लेंस प्रभाव की वजह से चमक में वृद्धि कर सकते हैं। आगे चलकर यह गणना भी की गई कि बौने सफेद तारों के संदर्भ में यह वृद्धि कितनी होगी। मगर किसी ने इस तरह की घटना का अवलोकन नहीं किया था।

अब केपलर दूरबीन की मदद से के.ओ.आई. 3278 नामक पिंड में यह प्रभाव देखा गया है। पहले माना जा रहा था कि यह जोड़ी एक तारे और एक ग्रह की है मगर अब स्पष्ट हुआ है कि ये दो बौने तारे हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

7 मई से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

चिकित्सा

जीपीएस तकनीक से सर्जरी

रेणु भट्टाचार्य

जल्दी ही दुनिया शल्य क्रिया की एक नई हैरतअंगेज़ तकनीक से रूबरू होने वाली है। सोचकर हैरत होती है कि अब शल्य क्रिया जीपीएस तकनीक से हो सकेगी। अभी तक जीपीएस तकनीक का अर्थ सिर्फ वाहनों के संदर्भ में लिया जाता था लेकिन अब इंसान के शरीर के ऑपरेशन के लिए भी जीपीएस तकनीक का उपयोग किया जाएगा।

बहुत जल्द सर्जन ऑपरेशन में रास्ता बताने वाली तकनीक का उपयोग करेंगे। 3 डी तस्वीरों का इस्तेमाल करके ऑपरेशन सटीक और सुरक्षित बन पाएंगे। इंफ्रारेड कैमरों ने डॉक्टरों को रास्ता दिखा दिया है।

कल्पना कीजिए कि आप ऑपरेशन थिएटर में हैं और सर्जन प्रोफेसर गेरे स्ट्राउस साइनस का ऑपरेशन करने वाले हैं। पांच मॉनीटर अर्धगोलाकार स्थिति में ऑपरेशन टेबल पर रखे हुए हैं। ऊपर एक बड़ा मॉनीटर टंगा हुआ है और बीच में दो इन्फ्रारेड कैमरे लगे हैं। गेरे स्ट्राउस बताते हैं कि जिस तरह से ग्लोबल पोज़ीशनिंग सिस्टम (जीपीएस) कारों में इस्तेमाल होती है, ठीक उसी तरह यहां भी होगा। स्ट्राउस के मुताबिक, कार में आपके पास सेटेलाइट संदेशों का ग्राही होता है। यह सेटेलाइट मैप के हिसाब से कार की स्थिति बताता है।

ऑपरेशन में इंफ्रारेड कैमरे यही काम करते हैं, वे लगातार ऑपरेशन की तस्वीरें भेजते रहते हैं। एक छोटा रिसीवर उस मरीज़ से जुड़ा होता है जिसकी तस्वीर कैमरे से उतारी जाती है। जीपीएस सिस्टम में इस्तेमाल होने वाले मैप की जगह डॉक्टरों के पास सीटी स्कैन या एमआरआई तस्वीर होती है जो उन्हें बताती है कि वो ठीक जगह पर हैं।

हाई रिज़ोल्यूशन वाले सिटी स्कैन और एमआरआई तस्वीरें सर्जन को हड्डियों, नाड़ियों और तंत्रिकाओं की अलग-अलग और सूक्ष्म तस्वीरें दिखा सकती हैं। मरीज़ की ऑपरेशन से पहले ली गई तस्वीरों की तुलना ऑपरेशन के दौरान ली जा रही तस्वीरों से की जा सकती है। अर्थात सर्जन मरीज़ का ऑपरेशन करते वक्त ही जान सकते हैं कि कहां क्या है और किससे बचना है। इसका असर यह होगा कि सर्जन उस हिस्से को ज़्यादा बेहतर तरीके से पहचान कर निशान लगा सकेंगे। साइनस का ऑपरेशन चेहरे की तंत्रिकाओं के आसपास होता है। इस हिस्से पर निशान लगाने के लिए प्रोफेसर स्ट्राउस कंप्यूटर माउस का इस्तेमाल कर तस्वीर पर छोटे-छोटे बिंदु से निशान लगा देते हैं और फिर सारे आंकड़े सॉफ्टवेयर की मदद से जुटा लिए जाते हैं।

स्ट्राउस बताते हैं, कैमरा मरीज़ और उपरकण की स्थिति पहचान लेता है और एक-दूसरे के अनुसार उनकी जानकारी दे देता है। दूरी नियंत्रक बहुत कुछ कार में लगे पार्किंग सेंसर की तरह काम करता है, लेकिन उसकी तुलना में बहुत ज़्यादा सटीक है। इंफ्रारेड कैमरे चौथाई मिलीमीटर तक का अंतर बता देते हैं। अगर सर्जन किसी बेहद संवेदनशील हिस्से के बहुत करीब पहुंच जाता है तो अलार्म बज जाता है और उपकरण अपने आप बंद हो जाता है। एक मॉनीटर स्थिति दर्शाता है जबकि दूसरा मॉनीटर शरीर के भीतरी अंगों की तस्वीर दिखाता रहता है।

उम्मीद की जा रही है कि जीपीएस तकनीक ऑपरेशन को सुरक्षित बना देगी। जर्मन शहर लाइपज़िग के इंटरनेशनल रेफरेंस एंड डेवलपमेंट सेंटर फॉर सर्जिकल टेक्नॉलॉजी में भविष्य के ऑपरेशन थिएटर बन रहे हैं। 3-डी तस्वीरों के साथ काम करना भी जल्द मुमकिन हो जाएगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

7 मई से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

चिकित्सा

मां के पेट में होगी बच्चे की सर्जरी

रेणु भट्टाचार्य

किसी औरत के लिए मां बनना एक उपलब्धि मानी जाती है। लेकिन अगर बच्चा बीमार पैदा हो, तो यह उसके लिए सबसे बड़ी त्रासदी भी साबित हो सकती है। मेडिकल साइंस उस जगह पहुंच गया है, जहां बच्चे के जन्म से पहले ही उसकी सर्जरी हो सकती है।

यूक्रेन के डॉक्टर विक्टर ओशोविस्की इस बेहद जटिल प्रोजेक्ट पर काम कर रहे हैं। उनका कहना है कि अगर गर्भ में पल रहे बच्चे को कोई बीमारी हो, तो इसके लिए मां की सर्जरी करने की ज़रूरत नहीं है, सीधे बच्चे की सर्जरी की जा सकती है।

यूक्रेन में पढ़ाई करने के बाद जर्मनी के माइंस यूनिवर्सिटी में रिसर्च कर रहे डॉक्टर ओशोविस्की ने *साइंस* पत्रिका में जानकारी दी कि जानवरों, खास तौर पर भेड़ों पर इसका सफल परीक्षण किया जा चुका है। उनका कहना है कि गर्भ के अंदर अगर जुड़वां बच्चे हैं और दोनों एक-दूसरे से जुड़े हैं, तो दोनों के बचने की गुंजाइश बहुत कम होती है। डॉक्टर ओशोविस्की का कहना है, पैदा होने तक ऐसे 80 फीसदी मामलों में बच्चों की जान चली जाती है क्योंकि उनका रक्त प्रवाह कुछ अजीब होता है। लेकिन अब गर्भ के अंदर ही सर्जरी के ज़रिए उन्हें अलग-अलग करके दोनों की जान बचाई जा सकती है।

मेडिकल साइंस की यह कामयाबी गर्भ के अंदर बीमार पड़ने वाले करोड़ों बच्चों को बचा सकती है। दुनिया भर में हर साल ढाई लाख से ज़्यादा बच्चे बीमारी की वजह से मृत पैदा होते हैं। भारत में प्रति एक लाख में पांच बच्चे इसके शिकार होते हैं। बीमारी के साथ पैदा होने वाले बच्चों की संख्या तो इससे कई गुना ज़्यादा है। अमेरिका में पहले भी अजन्मे बच्चों की सर्जरी की जा चुकी है। मशहूर डॉक्टर माइकल हैरिसन ने ऐसी सर्जरी की है, जिसमें पहले मां के पेट में चीरा लगाया जाता है, फिर गर्भाशय में सर्जरी की जाती है। लेकिन युरोप सहित दुनिया के कई हिस्सों में इसे स्वीकार नहीं किया गया है। डॉक्टर ओशोविस्की का कहना है कि युरोप में जर्मनी में इस रिसर्च की सबसे बेहतर संभावना है।

गर्भ के अंदर सर्जरी बेहद जटिल प्रक्रिया है। डॉक्टरों को विशेष उपकरणों को गर्भाशय में उस जगह पहुंचाना होता है, जहां एक झिल्ली के अंदर बच्चा सुरक्षित रूप से विकास कर रहा होता है। इस झिल्ली में द्रव भी होता है। उस द्रव तक उपकरण पहुंचने के बाद ही बच्चे का ऑपरेशन संभव है। मामूली-सी चूक से झिल्ली नष्ट हो सकती है, जिसके साथ बच्चा भी खत्म हो सकता है। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या एक बीमार बच्चे को जीवित पैदा करना बेहतर है, या उसकी बीमारी ठीक करते हुए उसे गंवा देना।

डॉक्टर ओशोविस्की *एम्नियोटिक सैक* (गर्भाशय में बच्चे को सुरक्षित रखने वाली झिल्ली) की जटिलता समझाते हैं। कुछ जानवर इस झिल्ली को दोबारा पैदा करने में सक्षम होते हैं, लेकिन मनुष्यों में ऐसा नहीं होता। अगर सर्जरी के दौरान चूक से यह झिल्ली फट जाए, तो मां की जान का खतरा होता है। उनका कहना है, यह कोई आसान काम नहीं है। गर्भाशय में एक महीन छेद बनाना होता है, लेकिन इतने छोटे छेद से आप सब कुछ नहीं देख सकते। अगर छेद बड़ा होगा, तो आसानी होगी लेकिन उसमें जोखिम बढ़ जाता है। हम बीच का रास्ता तलाश रहे हैं।

डॉक्टरों को इस सर्जरी से आपस में जुड़े जुड़वां बच्चों की सर्जरी के मामले में सबसे ज़्यादा उम्मीद है। दूसरा हर्निया

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

की सर्जरी है। इसके अलावा अजन्मे बच्चे के फेफड़ों की सर्जरी भी गर्भ के अंदर की जा सकती है। दिल का भी ऑपरेशन संभव है। कई बार बच्चे के दिल में खून का सही प्रवाह नहीं होता और कभी-कभी उसके हृदय में मामूली-सा छेद होता है। यह सर्जरी गर्भ में ही की जा सकती है।

गर्भ के अंदर भ्रूण में कभी-कभी ट्यूमर विकसित हो जाता है। कई बार ट्यूमर का आकार बड़ा हो जाता है और वे अजन्मे बच्चे को काफी नुकसान पहुंचा सकते हैं। यहां तक कि ट्यूमर में भ्रूण से अधिक रक्त जमा हो जाता है। ऐसे मामलों में सर्जरी कर ट्यूमर को रक्त सप्लाई करने वाली धमनियों से रक्त प्रवाह रोका जा सकता है।

कुछ मामलों में भ्रूण की रीढ़ झिल्ली और द्रव से नहीं ढंकी होती है। इसकी वजह से बच्चे में विकार पैदा होता है और वह त्वचा की बीमारी के साथ पैदा होता है। उनके जननांग ठीक से काम नहीं करते और उन्हें चलने फिरने में भी मुश्किल होती है। डॉक्टर ओशोविस्की इस पर भी काम कर रहे हैं।

बच्चा लगभग नौ महीने तक मां के पेट में रहता है। डॉक्टरों का कहना है कि पहले के तीन महीने बेहद महत्वपूर्ण होते हैं और इस दौरान मां को सबसे ज़्यादा एहतियात रखने की ज़रूरत है। इसी दौरान उन्हें बीमारी का भी खतरा रहता है। डॉक्टरों का कहना है कि बीमारी का पता लगने के बाद जितना जल्दी हो सके इसकी सर्जरी की जानी चाहिए। इससे सर्जरी का बेहतर नतीजा निकलता है।

भ्रूण की सर्जरी और इसकी नैतिकता का सवाल उठना लाज़मी है। एक बड़ा खेमा इस सर्जरी के खिलाफ है। उनका कहना है कि गर्भ के दौरान मां के पेट के अंदर किसी भी तरह की सर्जरी करना अनैतिक है और इस दौरान यदि मां या बच्चे को कुछ हो जाता है, तो इसकी भरपाई कोई नहीं कर सकता, लेकिन दूसरे खेमे का मानना है कि अगर गर्भ में पल रहा बच्चा खुद एक जान है, तो उस जान को भी सेहतमंद होने का अधिकार है और ऐसे में सर्जरी की जानी चाहिए। युरोप में ऐसी सर्जरी से पहले एक नैतिकता कमेटी से मंज़ूरी लेनी पड़ती है। ***(स्रोत फीचर्स)***

7 मई से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

वन्य जीव

चल बसा सरिस्का का कसाई

डॉ. महेश परिमल

चुनाव के इस मौसम में एक खबर ने पर्यावरणविदों को राहत दी है। अब यदि यह कहा जाए कि संसारचंद चल बसा, तो किसी को आश्चर्य नहीं होगा। पर जो संसारचंद को जानते हैं, वे यह भी अच्छी तरह से जानते हैं कि उससे बड़ा कसाई आज तक पैदा नहीं हुआ। वह तो सरिस्का का वीरप्पन था।

उस पर 850 बाघों की हत्या का आरोप था। उसने 2004 में राजस्थान के सरिस्का अभयारण्य में बाघों की पूरी बस्ती का ही खात्मा कर दिया था। बाघों के अलावा उस पर कुल 5 हज़ार जंगली जानवरों के शिकार का भी आरोप था। वह इनका शिकार करके उनके चमड़े और दांत का बड़ा व्यापारी था। उसने करीब 50 हज़ार भेड़ियों और सियारों का भी शिकार किया था।

ऐसा नराधम कैंसर से मर गया। लोगों का मानना है कि उसकी मौत इतनी आसानी से नहीं होनी थी। उसकी मौत इससे भी बदतर होनी थी। दिल्ली के सदर बाज़ार से अपनी ज़िंदगी शुरू करने वाले संसारचंद को इस हालत में लाने के लिए हमारे देश का भ्रष्ट तंत्र ही दोषी है। वन विभाग के रि वतखोर अधिकारियों के कारण ही वह इतना आगे बढ़ पाया। इतने जानवरों की हत्या के आरोपी इस व्यक्ति को सरकार ने केवल तीन साल की सज़ा दी थी। उसके बारे में सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि अगर संसारचंद को छोड़ दिया गया, तो वह इंसानों की खाल भी बेच देगा।

1974 में संसार चंद जब पहली बार बाघ और चीते की 680 खालों के साथ पकड़ा गया, तो लोगों की नज़रों में पहली बार सामने आया। तब तक उस पर 57 मामले चल रहे थे। उसके साथ उसकी पत्नी, पुत्र और भाई भी शामिल थे। इसके पहले वह केवल 16 वर्ष की आयु में पकड़ा गया था। उस समय उसे बहुत ही मामूली सज़ा हुई थी। उसकी उम्र को देखते हुए हाई कोर्ट ने उसकी सज़ा कम कर दी थी।

सज़ा पूरी कर जब वह जेल से बाहर आया, तब उसने जो हरकतें कीं, उससे पर्यावरण प्रेमियों को लगा कि उसे और सज़ा मिलनी थी क्योंकि सज़ा पूरी करने के बाद वह वन्य प्राणियों के लिए काल बन गया। उस पर वन्य प्राणियों की हत्या का केस चला। परंतु वन विभाग के रि वतखोर अधिकारियों द्वारा साक्ष्य ठीक से न जुटाए जाने के कारण उसे वैसी सज़ा नहीं हो पाई, जिसका वह वास्तविक रूप से हकदार था। हर बार वह कानून के जाल से छिटक जाता था। इसीलिए कुछ समय बाद ही वह बाघों के चमड़े का अंतर्राष्ट्रीय व्यापारी बन गया। आश्चर्य इस बात का है कि वह बिना किसी भय के सरिस्का में बाघ का शिकार करता था। उसके लिए किसी प्रकार की रोकटोक नहीं थी। समझा जा सकता है कि वन विभाग में उसकी कितनी पैठ थी।

राजस्थान पुलिस ने 2004 में जब संसारचंद के परिवार के पास से उसकी गोपनीय डायरी कब्ज़े में ली, तब पता चला कि उसने 40 बाघों और 400 चीतों के चमड़ों के सौदे किए थे। ये सौदे अक्टूबर 2003 से सितम्बर 2004 के बीच यानी केवल 11 महीनों में ही हुए थे। इस बारे में जब संसारचंद से पूछताछ हुई, तब उसने कबूला कि उसने बाघ के 470 और चीते के 2130 चमड़े नेपाल और तिब्बत के ग्राहकों को बेचे हैं। सितम्बर 2004 में जब उसके पास से बाघ के 60 किलो जबड़े बरामद किए गए, तब सभी चौंक उठे थे।

सरिस्का में उसका इतना अधिक आतंक था कि उसने एक के बाद एक सैकड़ों बाघों को मार डाला, परंतु प्रशासन

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पूरी तरह से अनजान ही बना रहा। वन विभाग भी चुपचाप केवल उसका तमाशा देखता रहा।

वन्य प्राणियों के चमड़े और जबड़ों की मांग हमारे देश की अपेक्षा चीन में अधिक होने के कारण संसारचंद ने तगड़ी कमाई की। चीन में बाघ के अंगों से कई चीज़ें बनाई जाती हैं। इससे उसकी कमाई और बढ़ने लगी। तब वह और अधिक बाघों का शिकार करने लगा। कुछ समय बाद तो वह इसका इतना अधिक आदी हो गया था कि जब तक वह बाघ का शिकार न कर ले, उसे चैन नहीं मिलता था। बाद में वह वन्य प्राणियों को ज़हर देकर मारने लगा।

वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ के कार्यकर्ताओं ने जब यह बताया कि ल्हासा में बाघ और चीते के चमड़े खुले आम बिक रहे हैं, तब सरकारी तंत्र जागा। लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी। चीन के लोग बाघ और चीते के चमड़ों की मुंहमांगी कीमत देने को तैयार थे। इसलिए वह अधिक से अधिक बाघों का शिकार करके मांग के अनुसार पूर्ति करता था। संसारचंद के खिलाफ कार्रवाई के लिए जब चारों तरफ से दबाव बढ़ने लगा, तब सीबीआई ने उसके खिलाफ 2005 में 'मकोका' लगाया। उसकी पत्नी रानी, पुत्र अक्ष और भाई नारायण चंद के खिलाफ विभिन्न अदालतों में मामले लंबित हैं। 2010 में संसारचंद की अपील पर सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि वह पिछले 30 सालों से यह गैरकानूनी धंधा कर रहा है। अब वह इस धंधे का आदी हो चुका है। इसलिए अदालत नरम रवैया नहीं अपना सकती। उत्तर प्रदेश और राजस्थान की अदालतों में भी उसके खिलाफ कई मामले लंबित हैं। पिछले 18 मार्च को वह कैंसर से ग्रस्त होकर इस दुनिया से चला गया, और लाखों मूक जानवरों और अनेक पर्यावरण प्रेमियों के लिए एक राहत भरी खबर छोड़ गया।

ऐसा केवल हमारे ही देश में हो सकता है कि पर्यावरण के दुश्मन को मात्र कुछ वर्षों की सज़ा हो। यदि देश में पर्यावरण के खिलाफ काम करने वाले या पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वालों पर कड़ी सज़ा का प्रावधान हो, तो संसारचंद जैसे लोग पनप ही न पाएं। दूसरी ओर, यदि कोई लगातार बाघों का शिकार कर रहा है, उनकी खालें बेच रहा है, तो कहीं न कहीं उसे वन विभाग की शह मिली होगी। संसारचंद ने वन विभाग के अधिकारियों को जमकर रि वत दी होगी, इसीलिए वह अपना व्यापार इस पैमाने पर बढ़ा पाया। यदि रि वतखोर अधिकारियों पर शिकंजा कसा जाए, तो भविष्य में संसारचंद पैदा होने की संभावना को खत्म नहीं, कम अवश्य किया जा सकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

इसे तत्काल प्रकाशित कर सकते हैं

Website : www.eklavya.in

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

विज्ञान समाचार

क्या पुरुष गुणसूत्र खत्म हो जाएगा?

स्तनधारी प्राणियों में लिंग का निर्धारण इस बात से होता है कि गुणसूत्रों की 23 वीं जोड़ी में दोनों गुणसूत्र एक समान (एक्स) हैं या असमान (एक एक्स और एक वाय) हैं। गुणसूत्रों की तेईसवीं जोड़ी के दोनों गुणसूत्र समान हों तो मादा होगी और दोनों गुणसूत्र भिन्न हों तो नर। इसलिए तेईसवीं जोड़ी को लिंग गुणसूत्र भी कहते हैं।

एक्स और वाय गुणसूत्र बहुत अलग-अलग होते हैं। जहां एक्स गुणसूत्र काफी बड़ा होता है, वहीं वाय गुणसूत्र बहुत छोटा। दरअसल करीब 20-30 करोड़ वर्ष पूर्व एक्स गुणसूत्र पर उपस्थित 600 जीन्स के बराबर जीन्स वाय गुणसूत्र पर हुआ करते थे मगर आज सिर्फ 19 ही बचे हैं।

पूर्व में किए गए अध्ययनों से पता चला था कि स्तनधारियों में वाय गुणसूत्र लगातार सिकुड़ता जा रहा है। वास्तव में 1950 के दशक में वाय गुणसूत्र का रुतबा घटने लगा था। जेनेटिक्स वैज्ञानिक कर्ट स्टाइन ने जीवाश्म रिकॉर्ड के अध्ययन के आधार पर बताया था कि आज वाय गुणसूत्र पर बहुत ही थोड़े-से ऐसे जीन्स बचे हैं जो किसी प्रोटीन का निर्माण करते हैं। फिर 2002 में एक अन्य वैज्ञानिक ग्रेव्स ने बताया था कि स्तनधारी वंश में वाय का आकार घटता जा रहा है। उन्होंने अनुमान व्यक्त किया था कि संभवतः अगले 1 करोड़ वर्षों में वाय गुणसूत्र पूरी तरह गायब हो जाएगा। तब वैज्ञानिकों के बीच बहस छिड़ी थी कि क्या वाय गुणसूत्र के लुप्त होने के साथ नर भी लुप्त हो जाएंगे।

हाल ही में *नेचर* में प्रकाशित एक शोध पत्र में बताया गया है कि वाय गुणसूत्र में जो ह्रास हो रहा था वह थम चुका है और वाय गुणसूत्र के विलोप का खतरा टल गया है। व्हाइटहेड इंस्टीट्यूट ऑफ बायोमेडिकल रिसर्च के निदेशक डेविड पेज और उनके साथियों ने इस शोध पत्र में स्पष्ट किया है कि वाय गुणसूत्र में जारी ह्रास करीब 2.5 करोड़ वर्षों से रुका हुआ है।

पेज और डेनियल विंस्टन बेलॉट ने स्तनधारियों की आठ प्रजातियों में वाय गुणसूत्रों की तुलना की है। उन्होंने शुरुआत उन प्रजातियों से की जो जीवाश्म रिकॉर्ड में पहले पाए जाते हैं, जैसे सांड, ओपोसम, चूहे वगैरह। इसके बाद उन्होंने बाद में प्रकट होने वाली प्रजातियों, जैसे रीसस मेकॉक बंदर, चिम्पैंज़ी और मनुष्यों को लिया।

तुलना से पता चला कि वाय गुणसूत्र में 10 करोड़ वर्ष पहले से जीन्स की संख्या में तेज़ी से गिरावट आई तो है मगर करीब 2.5 करोड़ वर्ष पूर्व जब बंदर और चिम्पैंज़ी का विकास पृथक मार्गों पर होने लगा था, तब से यह गिरावट रुक गई है। यानी अब वाय गुणसूत्र में स्थिरता दिखाई पड़ रही है।

पेज के मुताबिक यह स्थिरता इसलिए आई है क्योंकि वाय गुणसूत्र पर 12 जीन्स ऐसे हैं जो लिंग निर्धारण के अलावा कई और काम करते हैं जो नर के लिए महत्वपूर्ण हैं। चूंकि वाय पूरे शरीर के लिए अहमियत रखता है इसलिए विकास की प्रक्रिया में इसे सहेजा गया है।

वैसे अन्य कई वैज्ञानिक पेज से सहमत नहीं हैं। मसलन, जेनेटिक्स वैज्ञानिक ग्रेव्स का मत है कि वाय गुणसूत्र का ह्रास एक गति से नहीं होता। विलोप के अंतिम दिन थोड़े उतार-चढ़ाव भरे रहेंगे मगर लोप निश्चित है। वे बताती हैं कि स्तनधारियों की दो प्रजातियों (कांटेदार चूहों) में वाय गुणसूत्र नष्ट हो भी चुका है। वाय गुणसूत्र के कई जीन्स दूसरे गुणसूत्रों पर चले गए हैं या उनका काम किसी अन्य जीन ने ले लिया है। इन चूहों में लिंग निर्धारण की नई प्रणाली तक अस्तित्व में आ चुकी है। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इसे तत्काल प्रकाशित कर सकते हैं

Website : www.eklavya.in

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

विज्ञान समाचार

इथेनॉल ईंधन से ओज़ोन बढ़ती है

आजकल इस बात की काफी चर्चा है कि हमें पेट्रोल को छोड़कर अपनी कारें इथेनॉल से चलानी चाहिए। कहा जा रहा है कि इथेनॉल का उपयोग ईंधन के रूप में करने से कार्बन डाईऑक्साइड और नाइट्रोजन के ऑक्साइड कम पैदा होते हैं। जहां कार्बन डाईऑक्साइड धरती का तापमान बढ़ाने के लिए ज़िम्मेदार है वहीं नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। इथेनॉल प्रायः शकर के किण्वन से बनाया जाता है और ऐसा कहा जा रहा है कि शकर की कीमतों में वृद्धि का एक बड़ा कारण यह है कि अब इसका उपयोग इथेनॉल बनाने में होने लगा है।

इस बात को लेकर कोई अध्ययन नहीं किया गया था कि पेट्रोल छोड़कर इथेनॉल का उपयोग करने के पर्यावरण व स्वास्थ्य पर क्या असर होंगे। अलग-अलग मॉडल्स के आधार पर अलग-अलग अनुमान व्यक्त किए जाते रहे हैं।

मगर अब ब्राज़ील के शहर साओ पौलो में एक अध्ययन से पता चला है कि इथेनॉल के उपयोग से निचले वायुमंडल में ओज़ोन की मात्रा बढ़ती है। निचले वातावरण में ओज़ोन स्वास्थ्य के लिए काफी हानिकारक है।

इथेनॉल के उपयोग का यह अध्ययन सिंगापुर के अर्थ शास्त्री अल्बर्टो साल्वो और यूएस के रसायन शास्त्री फ्रांज़ गाइगर ने किया है। इस अध्ययन के लिए साओ पौलो का चयन इस आधार पर किया गया कि इस शहर में बड़ी संख्या में कारें इथेनॉल पर चलने लगी हैं। 2011 में शहर की करीब 60 लाख कारों में से 40 प्रतिशत इथेनॉल या इथेनॉल-पेट्रोल मिश्रण पर चल रही थीं। साओ पौलो के उपभोक्ताओं को यह फायदा है कि वे कीमतें देखकर इथेनॉल या पेट्रोल का उपयोग कर सकते हैं।

2009 से 2011 के बीच इथेनॉल की कीमतें तेज़ी से बढ़ी थीं और उस समय कुल कार ट्राफिक में पेट्रोल चालित कारों का अनुपात 42 प्रतिशत से बढ़कर 68 प्रतिशत हो गया था। इस दौरान किए गए अध्ययन में देखा गया कि पेट्रोल की खपत में वृद्धि का सीधा असर निचले वातावरण में ओज़ोन की मात्रा पर पड़ा। औसतन साओ पौलो के वातावरण में ओज़ोन की मात्रा 68 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर रही। जिन दिनों पेट्रोल की खपत बढ़ी, उन दिनों ओज़ोन की मात्रा घटकर 15 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर रह गई।

मगर साल्वो और गाइगर का कहना है कि इन आंकड़ों के आधार पर अभी यह नहीं कहा जा सकता कि पेट्रोल का उपयोग बेहतर है। पेट्रोल जलाने से कई अन्य समस्याएं पैदा होती हैं। जैसे नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स और धुएं के कण हवा में पहुंचते हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। उन्होंने तो पेट्रोल और इथेनॉल की तुलना के लिए एक तरीका उपलब्ध कराया है जिसका उपयोग करके हम भविष्य में कुछ कारगर निष्कर्ष निकाल सकेंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इसे तत्काल प्रकाशित कर सकते हैं **Website : www.eklavya.in**

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

विज्ञान समाचार

शोधकर्ता पुरुष हो, तो चूहों को दर्द कम होता है

हाल ही में *नेचर मेथड्स* नामक शोध पत्रिका में प्रकाशित एक अध्ययन का निष्कर्ष है कि चूहों पर प्रयोग करते समय यदि शोधकर्ता पुरुष हो, तो प्रायोगिक चूहों को दर्द कम होता है, बनिस्बत जब शोधकर्ता महिला हो। यह अजीब-सा निष्कर्ष जंतु शोध के परिणामों को देखने का नज़रिया बदल सकता है।

इस अध्ययन के प्रमुख शोधकर्ता मैकगिल विश्वविद्यालय, कनाडा के जेफ्री मोगिल थे। उनको लगता था कि अनौपचारिक रूप से यह बात कई बार कही जाती थी कि प्रायोगिक जंतु उस समय दर्द का इज़हार कम करते थे जब शोधकर्ता उसी कमरे में मौजूद हो। मगर यह मात्र कही-सुनी बात थी, किसी ने इसकी जांच करने की कोशिश नहीं की थी। मोगिल ने इसी बात की जांच करने की ठानी।

मोगिल की टीम ने चूहों को ऐड़ी में एक इंजेक्शन देकर उनके दर्द का मापन किया। यह काम या तो शोधकर्ता की उपस्थिति में किया गया या उसकी अनुपस्थिति में। अनुपस्थिति में प्रयोग करने का मतलब था कि शोधकर्ता इंजेक्शन लगाकर फौरन कमरे से चले जाते थे। यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जंतुओं में दर्द का इज़हार उस समय 40 प्रतिशत तक कम रहा जब शोधकर्ता पुरुष था बजाय महिला के।

यहां तक देखा गया कि यदि कमरे में किसी पुरुष द्वारा एक दिन पहले पहना गया टी शर्ट रख दिया जाए तो भी दर्द का इज़हार कम होता है। इसके अलावा, बगलों में से रसायन लेकर आसपास रखने पर भी चूहों में दर्द का इज़हार कम था। गौरतलब है कि पुरुषों और महिलाओं की बगलों के स्राव का रासायनिक संघटन थोड़ा अलग-अलग होता है।

दूसरी ओर, महिलाओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति में दर्द के इज़हार में कोई फर्क नहीं देखा। आश्चर्यचकित होकर शोधकर्ताओं ने थोड़ी और खोजबीन की। पता चला कि जो भी गंधयुक्त उद्दीपन (उकसावा) था वह जंतुओं के दर्द की क्रियाविधि पर सीधे असर नहीं डालता था, जैसा कि दर्द निवारक दवाइयां करती हैं। दरअसल, इन गंधों का असर तो खून में एक हॉरमोन कार्टिकोस्टेरोन की मात्रा में वृद्धि के रूप में दिखाई दिया। कार्टिकोस्टेरोन को तनाव-हॉरमोन भी कहते हैं और यह तनाव को बढ़ाता है।

शोधकर्ताओं का निष्कर्ष है कि पुरुषों की उपस्थिति में चूहे ज़्यादा तनावग्रस्त महसूस करते हैं और यह तनाव उनके दर्द के इज़हार को बदल देता है।

वैसे अपने अध्ययन को आगे बढ़ाते हुए मोगिल व उनके साथियों ने यह भी देखा कि सिर्फ पुरुष ही नहीं, अन्य जंतुओं के नर की उपस्थिति भी इसी तरह का असर पैदा करती है।

मोगिल का मत है कि इसका अर्थ यह है कि दर्द सम्बंधी अध्ययनों के परिणामों को समझते हुए ज़्यादा सावधानी की ज़रूरत है। जैसे उन्होंने अपनी ही प्रयोगशाला में हो चुके ऐसे पूर्व अध्ययनों की छानबीन की तो पता चला कि पुरुष शोधकर्ताओं और महिला शोधकर्ताओं द्वारा किए गए प्रयोगों में दर्द को लेकर स्पष्ट अंतर नज़र आता है। उनको लगता है कि इतना तो किया ही जा सकता है कि ऐसे अध्ययनों के साथ यह अनिवार्य तौर पर बताया जाए कि शोधकर्ता पुरुष था या स्त्री। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इसे तत्काल प्रकाशित कर सकते हैं

Website : www.eklavya.in

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या **एकलव्य** के नाम ड्राफ्ट से करें

कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन

एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,

बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016

फोन : (0755) 2550976, 2671017

ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

विज्ञान समाचार

आपसे बातें करेंगे बैक्टीरिया

क्या आपने कभी बैक्टीरिया से बातें की हैं? जी हां, वही बैक्टीरिया जो अत्यंत सूक्ष्म होते हैं और हम उन्हें रोगजनक या भोजन सड़ाने वाले कारकों के रूप में जानते हैं। अब स्पैन के वेलेंशिया विश्वविद्यालय के मैनुअल पोरकार ने इस बातचीत को संभव बनाने की दिशा में पहला कदम उठा लिया है।

पोरकार कोशिश कर रहे हैं कि मनुष्य और बैक्टीरिया बातचीत कर सकें। पहली कोशिश यह है कि बैक्टीरिया प्रकाश के माध्यम से अपनी बात कहेंगे और फिर अगला कदम यह होगा कि वे बोलकर अपनी बात बता पाएं। अभी बात यहां तक पहुंची है कि किसी माध्यम में पनपते बैक्टीरिया पोरकार की टीम को यह बता सकते हैं कि वातावरण उनके लिए कितना उपयुक्त है।

पोरकार की टीम ने *एशरीशिया कोली* (*ई.कोली*) नामक बैक्टीरिया में जेनेटिक इंजीनियरिंग की मदद से कुछ जीन स्विच जोड़ दिए। ये जीन्स वातावरण में कई कारकों (जैसे तापमान, अम्लीयता, ऑक्सीजन की मात्रा वगैरह) में होने वाले परिवर्तनों को भांपकर कतिपय प्रोटीन बनाते हैं। ये प्रोटीन अलग-अलग रंगों का प्रकाश उत्पन्न करते हैं। जैसे यदि वातावरण बहुत गर्म हो रहा है, तो कोई खास जीन प्रोटीन बनाएगा और वह एक खास रंग का प्रकाश पैदा करेगा। जब टीम ने इन बैक्टीरिया के संवर्धन माध्यम के वातावरण में परिवर्तन किया तो बैक्टीरिया द्वारा उत्सर्जित प्रकाश की मात्रा वातावरण की अनुकूलता के हिसाब से कम-ज़्यादा हुई।

पोरकार की टीम का अगला कदम यह होगा कि इन प्रकाश तरंगों को बोलों में बदला जाए। यह तकनीक काफी उपयोगी हो सकती है। जैसे किसी खाद्य पैकेट में इस तरह के कुछ बैक्टीरिया मिला दिए जाएंगे। यदि भोजन खराब होने लगेगा तो ये विशेष प्रकाश उत्सर्जित करके इस बात की सूचना दे देंगे। इसी प्रकार से इस तकनीक का उपयोग औद्योगिक फरमेंटर्स और औषधि निर्माण प्रक्रिया में किया जा सकता है।

टीम की महत्वाकांक्षा यह है कि वे बैक्टीरिया को काम करने का आदेश भी दे सकें। इसके लिए वे बैक्टीरिया में ऐसे जीन स्विच लगाएंगे जो किसी विशेष तरंग लंबाई का प्रकाश पाते ही सक्रिय हो उठेंगे और मनचाहा काम करने लगेंगे। आगे चलकर यही काम उनसे बोलकर भी करवाया जा सकेगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

14 मई से पूर्व प्रकाशित न करें **Website : www.eklavya.in**

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

जीव विज्ञान

विमान के पहिए में बच्चे का जीवित रहना

डॉ. सुशील जोशी

पिछले माह खबर आई थी कि एक 16-वर्षीय बच्चा हवाई एयरलाइन्स के विमान में पहिए के लिए बने कक्ष में घुस गया और साढ़े पांच घंटे की उड़ान के बाद जीवित बच गया। यह बच्चा कैलिफोर्निया के सान्टा क्लारा हवाई अड्डे पर किसी तरह से पहिए के कक्ष में घुस गया था। गौरतलब है कि हवाई जहाज़ों के पहिए ज़मीन पर उतरते समय खुलकर बाहर निकल आते हैं और उड़ान भरने के बाद वापिस अपने कक्ष में चले जाते हैं।

यह विमान पूरे साढ़े पांच घंटे बाद मोई के हवाई अड्डे पर उतरा। विमान के उतरने के करीब 1 घंटे बाद वह बच्चा पहिया कक्ष से बाहर निकलकर हवाई पट्टी पर टहलने लगा। हवाई उड़ान के बारे में थोड़ा बहुत भी जानने वाले लोग इसे एक चमत्कार ही मान रहे हैं कि वह बच्चा जीवित बच गया।

सबसे पहली बात तो यह है कि हवाई जहाज़ के उड़ान भरने के कुछ मिनटों बाद पहिए बंद होते हैं। बच्चा उससे पहले गिर सकता था। विमान के उतरने से कुछ मिनटों पहले पहिए खुल जाते हैं, तब भी बच्चे के गिरने की संभावना काफी थी। इसके अलावा, पहिए बंद होते समय वह दब सकता था। बहरहाल, ऐसा कुछ नहीं हुआ और वह बच्चा विमान के साथ 11,000 मीटर (11 कि.मी.) की ऊंचाई पर पहुंच गया। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि इसका अर्थ क्या है?

धरती से जैसे-जैसे ऊपर जाते हैं, वैसे-वैसे हवा विरल होती जाती है। ऐसा माना जाता है कि प्रति 5 किलोमीटर ऊपर जाने पर हवा का दबाव पहले से आधा रह जाता है। यानी 11,000 मीटर की ऊंचाई पर हवा का दबाव पृथ्वी की सतह के मुकाबले मात्र एक-चौथाई रह गया होगा।

वायुयानों के अंदर हवा का दबाव समुद्र तल पर पाए जाने वाले सामान्य वायुमंडलीय दाब के बराबर बनाकर रखा जाता है। गौरतलब है कि पहियों के कक्ष वायुयान से पृथक होते हैं और उनमें दबाव बनाकर रखने की कोई व्यवस्था नहीं होती। जब कुल वायु का दबाव कम होगा, तो ज़ाहिर है ऑक्सीजन की मात्रा भी कम होगी। बच्चे का इतनी कम ऑक्सीजन में जीवित रह पाना अपने आप में एक आश्चर्य है। और इसे जब दूसरी समस्या से जोड़कर देखेंगे तो रोंगटे खड़े हो जाएंगे।

ऊंचाई बढ़ने के साथ-साथ तापमान भी कम होता जाता है। एक अनुमान के मुताबिक 11,000 मीटर की ऊंचाई पर तापमान शून्य से 62 डिग्री सेल्सियस कम रहा होगा। वैसे हवाई जहाज़ों पर बाहर की हवा का तापमान नापने के लिए यंत्र लगे होते हैं। एक बार फिर हवाई जहाज़ के अंदर का तापमान तो 20-25 डिग्री सेल्सियस पर रखने की व्यवस्था होती है मगर पहिया कक्ष में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं होती। तो वह बच्चा साढ़े पांच घंटे तक शून्य से 62 डिग्री नीचे के तापमान पर था।

इतने कम तापमान पर उसका खून जम गया होगा, हृदय ने काम करना बंद कर दिया होगा, रक्त प्रवाह धीमा पड़ गया होगा। यानी एक तो ऑक्सीजन कम है और रक्त प्रवाह के धीमा पड़ जाने की वजह से उसे कोशिकाओं तक पहुंचाया भी नहीं जा पा रहा है।

इससे कहीं अधिक तापमान पर ही पानी बर्फ बन जाता है। तब यह कल्पना ही की जा सकती है कि शरीर में उपस्थित पानी का क्या हुआ होगा। यदि वह पानी बर्फ बना होता तो उसने कोशिकाओं की झिल्लियों को फाड़ दिया होता। इतने कम तापमान पर शरीर की सारी क्रियाएं

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

धीमी पड़ जाती हैं। तो इस बच्चे के शरीर का अंदरुनी तापमान कैसे इतना बना रहा होगा कि उसकी कोशिकाएं मरें नहीं।

इन सारी बातों को देखते हुए अधिकांश लोगों का मत बना कि यह अविश्वसनीय है। इससे पहले मात्र एक बार और एक व्यक्ति ऐसी परिस्थिति में जीवित बचा है मगर वह जिस विमान में फंसा था, वह मात्र 7 कि.मी. की ऊंचाई पर उड़ा था और यात्रा महज़ एक घंटे की थी। शेष किसी भी मामले में व्यक्ति जीवित नहीं बचा है। तो पहले-पहल तो माहौल शंका का था। मगर दोनों हवाई अड्डों के सीसीटीवी फुटेज से स्पष्ट हो गया कि वह बच्चा सचमुच एक हवाई अड्डे पर पहिए के कक्ष में घुस गया था और दूसरे हवाई अड्डे पर उसमें से निकलकर बाहर घूमने लगा था।

तो क्या व्याख्या है इस 'चमत्कार' की? क्या वह बच्चा 'शीतनिद्रा' में चला गया था यानी क्या वह हायबरनेट कर रहा था? शीतनिद्रा कई प्राणियों में देखी जाती है। इस दौरान प्राणी की शरीर क्रियाएं निहायत धीमी पड़ जाती हैं, उसकी ऊर्जा की ज़रूरत बहुत कम हो जाती है, हृदय गति बहुत धीमी हो जाती है और वह सांस भी बहुत ही धीमे लेने लगता है। कई प्राणी चंद महीनों तक इस तरह की शीतनिद्रा में रहते हैं। आम तौर पर ठंड के दिनों में जब तापमान बहुत कम हो जाता है और भोजन की उपलब्धता बहुत कम हो जाती है उस समय कई प्राणी इस तरह की शीतनिद्रा में चले जाते हैं।

आम तौर पर तापमान कम होने पर ज़्यादा समस्या उन प्राणियों को होती है जिनके शरीर का तापमान बाहरी वातावरण के साथ घटता-बढ़ता है। इनमें मछलियां, छिपकलियां, मेंढक वगैरह आते हैं। स्तनधारियों में शरीर का तापमान बाहरी वातावरण के साथ नहीं घटता-बढ़ता बल्कि उनके शरीर की आंतरिक क्रियाओं के कारण स्थिर बना रहता है। मगर इनमें भी बाहर का तापमान बहुत कम हो जाए तो शरीर का तापमान स्थिर रखने के लिए बहुत ऊर्जा खर्च करना पड़ती है। इसलिए कुछ स्तनधारी भी अत्यंत कम तापमान होने पर शीतनिद्रा में चले जाते हैं।

हवाई जहाज़ के पहिए में बच्चे के जीवित बच जाने की एक व्याख्या यह की जा रही है कि वह शायद शीतनिद्रा में चला गया था। क्या यह संभव है?

शीतनिद्रा एक जटिल प्रक्रिया है। मनुष्यों के सबसे नज़दीकी स्तनधारियों (प्रायमेट्स) में मात्र एक ही है जो शीतनिद्रा में जाता है: मैडागास्कर में पाया जाने वाला मोटी पूंछ वाला बौना लेमूर (*काइरोगेलियस मेडियस Cheirogaleus medius*)। यह जानवर करीब 8 माह तक शीतनिद्रा में रह सकता है।

शीतनिद्रा के दौरान प्राणी की कार्यिकी में ज़बरदस्त बदलाव आते हैं। जैसे बौने लेमूर की हृदय गति सामान्यतः 180 प्रति मिनट होती है मगर शीतनिद्रा के दौरान उसका हृदय प्रति मिनट मात्र 4 बार धड़कता है। शरीर का तापमान, जो सामान्य रूप से 36-37 डिग्री सेल्सियस होता है, गिरकर बर्फ के तापमान तक पहुंच जाता है। सांस लेने की दर भी बहुत कम हो जाती है। एक लेमूर को तो 21 मिनट में एक बार सांस लेते देखा गया है।

शीतनिद्रा पर शोध करने वाले जीव वैज्ञानिक मानते हैं कि शीतनिद्रा के दौरान होने वाले ऐसे इंतहा कार्यिकीय परिवर्तन दरअसल जीन्स की अभिव्यक्ति में परिवर्तन के परिणाम हैं।

शीतनिद्रा से पूर्व बौना लेमूर मोटा होने लगता है। कई बार तो एक महीने में इसका वज़न दुगना होता देखा गया है। जब बारिश के मौसम में भोजन प्रचुरता में उपलब्ध होता है तब वह खूब खाता है। साथ ही उसके वे जीन स्विच ऑन हो जाते हैं जो कार्बोहायड्रेट को पचाने के लिए एंज़ाइम बनाते हैं। इन जीन्स के ऑन होने पर कार्बोहायड्रेट को पचाकर वसा का निर्माण होता है। और भोजन में से सारी वसा को वह अपनी पूंछ में जमा कर लेता है।

अब शीतनिद्रा शुरू होती है। इस समय प्रमुख परिवर्तन यह होता है कि वे जीन्स चालू हो जाते हैं जो वसा के पाचन में मददगार एंज़ाइम बनाते हैं।

1990 के दशक में वैज्ञानिकों ने गिलहरियों की शीतनिद्रा के दौरान होने वाले जैव रासायनिक परिवर्तनों की खोजबीन की थी। प्रयोगशाला में शीतनिद्रा के अध्ययन के लिए गिलहरी एक मॉडल जंतु रहा है। इस अध्ययन के दौरान वह पहला जीन पहचाना गया था जिसकी अभिव्यक्ति सक्रिय गिलहरी और शीतनिद्रा में पड़ी गिलहरी में अलग-अलग होती है। यह जीन था अल्फा 2-मैक्रोग्लोबुलिन (अल्फा 2 एम)। यह जीन खून के थक्के बनने से रोकता है। शीतनिद्रा में लीन गिलहरी में यह ज़्यादा अभिव्यक्त होता है। इस जीन की सक्रियता शीतनिद्रा के समय बहुत ज़रूरी है क्योंकि उस समय रक्त प्रवाह बहुत धीमा होता है और खून के थक्के बनने की प्रक्रिया घातक साबित हो सकती है।

जब वातावरण का तापमान कम होने लगता है और यदि विशेष प्रयास न किए जाएं, तो शरीर का आंतरिक तापमान

भी कम होने लगता है। तापमान कम होने के साथ-साथ शरीर में चलने वाली जैव-रासायनिक क्रियाएं भी धीमी पड़ने लगती हैं। मगर वे बहुत अधिक धीमी भी नहीं पड़तीं।

शीतनिद्रा के दौरान अल्फा 2 एम जैसे जीन्स की सक्रियता का बढ़ना यह दर्शाता है कि कोशिकाओं में जैव रासायनिक क्रियाएं चल रही हैं। इसका मतलब है कि शरीर के लिए ज़रूरी अणु ज़्यादा मात्रा में बनाए जा रहे हैं। जैसे वसा का उपयोग करके जंतु को जीवित रखने के लिए ज़रूरी एंज़ाइम वगैरह अवश्य ही ज़्यादा मात्रा में बन रहे होंगे।

अब जीनोम की पूरी डीएनए ृंखला पता लगाने की तकनीकें आसानी से उपलब्ध हैं और जीव वैज्ञानिक यह तुलना करने की कोशिश कर सकते हैं कि शीतनिद्रा के समय विभिन्न प्रजातियों में कौन-से जीन्स निष्क्रिय हो जाते हैं और कौन-से सक्रिय हो उठते हैं। जब यह तुलना की गई तो पता चला कि गिलहरी, भालू और छोटे भूरे चमगादड़ों में इनका पैटर्न एक-सा है। ये तीन स्तनधारी जीवों के तीन असम्बंधित कुलों के सदस्य हैं।

फिलहाल इन तीन अलग-अलग कुलों के जंतुओं में समानता के आधार पर यह तो नहीं कहा जा सकता कि यही पैटर्न हमें सारे स्तनधारियों में मिलेगा मगर इतना ज़रूर संकेत मिलता है कि शायद शीतनिद्रा से सम्बंधित जीन्स स्तनधारियों में काफी व्यापक रूप से विद्यमान हैं। यदि ये जीन्स विद्यमान हैं तो सवाल उठता है कि क्या इन्हें सक्रिय करने की क्रियाविधि यानी स्विच भी उपस्थित हैं। यह खोजबीन का एक विषय है। और यह सिर्फ पहिए में छिपे बच्चे की समस्या तक सीमित नहीं है।

उदाहरण के लिए, यदि शीतनिद्रा की जांच-पड़ताल के ज़रिए हम यह समझ पाएं कि शरीर की परिधि पर स्थित ऊतक अपर्याप्त रक्त प्रवाह के बावजूद कैसे काम चला लेते हैं, तो हमें स्ट्रोक या अन्य आपात कालीन स्थिति में दिमाग को सुरक्षित रखने का तरीका मिल पाएगा।

यह तो जानी-मानी बात है कि शीतनिद्रा के दौरान कम रक्त प्रवाह (यानी कम ऑक्सीजन और भोजन) के बावजूद मांसपेशियों में विकृतियां नहीं होती। इसकी क्रियाविधि को समझकर बिस्तर पर पड़े व्यक्तियों की मदद की जा सकती है। इसके अलावा शीतनिद्रा की समझ हमें मोटापे से लड़ने में भी मदद कर सकती है। शीतनिद्रा के दौरान जंतु मात्र संग्रहित वसा पर जीवित रहते हैं। तो यह हमें वसा का उपयोग करने के तरीके सिखा सकता है।

वैसे यह सवाल अनुत्तरित ही है कि वह बच्चा क्या शीतनिद्रा के चलते जीवित बच पाया था या कोई और क्रियाविधि काम कर रही थी। ***(स्रोत फीचर्स)***

14 मई से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

अंतरिक्ष जीव विज्ञान

धरती के बाहर पानी के साक्ष्य

डॉ. इरफान ह्यूमन

धरती पर पानी को जीवन के अस्तित्व के लिए ज़रूरी समझा जाता है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि धरती पर पानी अंतरिक्ष की देन है, अर्थात धरती पर पानी धूमकेतुओं द्वारा अंतरिक्ष से लाया गया है। धरती के अतिरिक्त यदि किसी ग्रह पर पानी और जीवन होने की बात सोची जा सकती है तो वह है मंगल। लेकिन अब शनि ग्रह के चन्द्रमा एनसेलादूस पर पानी के विशाल भण्डार होने की संभावना ने वैज्ञानिकों सहित पूरी दुनिया को चौंका दिया है।

वैज्ञानिक सौर मण्डल के बाहर ब्रह्मांड के अन्य पिण्डों पर पानी की तलाश में लगे हैं और समय-समय पर उन्हें वहां पानी के पुख्ता प्रमाण मिलते रहे हैं। यदि धरती के सबसे करीबी आकाशीय पिण्ड की बात की जाए, तो बंजर समझे जाने वाले चन्द्रमा पर भी पानी होने की बात कही जा रही है। मानव रहित अमरीकी अंतरिक्ष उपग्रह ल्यूनर प्रॉस्पेक्टर ने 11 जनवरी 1997 को चन्द्रमा की कक्षा में स्थापित होकर चन्द्रमा के अनेक तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया, जिसमें प्रमुख था चन्द्रमा पर बर्फ के विशाल भण्डार की खोज।

तब आशा जगी थी कि चन्द्रमा की सतह पर उत्खनन कर पानी निकाला जा सकता है और उसको आसवित करके संग्रहित किया जा सकता है। ल्यूनर प्रॉस्पेक्टर मिशन के प्रमुख डॉ. एलन विन्डर की मानी जाए तो अगर ऐसा पानी निकालने में सफलता मिलती है तो चन्द्रमा पर जाने वाले अंतरिक्ष यात्रियों के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध रहेगा और उन्हें पृथ्वी से पानी नहीं ले जाना पड़ेगा। इस पानी द्वारा ऑक्सीजन भी उपलब्ध कराई जा सकेगी जिसमें जहां एक ओर अंतरिक्ष यात्री सांस ले सकेंगे वहीं, दूसरी ओर, इससे निकली हाइड्रोजन को रॉकेट के ईंधन के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। हालांकि बाद में कॉर्नेल युनिवर्सिटी के अंतरिक्ष वैज्ञानिक प्रो. रोनाल्ड बी. कैम्पबेल ने एक अतिसंवेदनशील राडार से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर डॉ. एलन विन्डर के दावों को झूठा साबित कर दिया, लेकिन डॉ. विन्डर से मिली ऊर्जा के बल पर अन्य वैज्ञानिक चन्द्रमा पर जीवन के अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण सम्बंधी अनुसंधान करके चन्द्रमा पर मानव बस्तियों के निर्माण की बात सोचने लगे हैं।

वैज्ञानिक चन्द्रमा पर खनिज और चट्टानों से पानी और ऑक्सीजन प्राप्त करने के प्रति आशावान हैं। हबल अंतरिक्ष दूरबीन के अत्याधुनिक कैमरे ने 21 अगस्त 2005 को चन्द्रमा एरिस्टार्कस ज्वालामुखी के मुहाने पर अल्ट्रावॉयलेट स्पेक्ट्रोस्कोपी से पहली बार चन्द्रमा की हाई रिज़ोल्यूशन तस्वीर उतारी जिसके विश्लेषण से पता चला कि इल्मेनाइट नामक खनिज चन्द्रमा पर सबसे आधिक मात्रा में उपस्थित है। वैज्ञानिकों के अनुसार लौह और ऑक्सीजन के सम्मिश्रण से इल्मेनाइट का निर्माण हुआ है जिससे भविष्य में चन्द्रमा पर पहुंचे लोगों के लिए ऑक्सीजन आसानी से सुलभ कराई जा सकती है। अल्ट्रावॉलेट स्पेक्ट्रोस्कोपी से यह तय करने में मदद मिलेगी कि सबसे अधिक मात्रा में इल्मेनाइट खनिज चन्द्रमा के किस क्षेत्र में पाया जाता है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि चन्द्रमा का जो हिस्सा अंधेरे में डूबा रहता है, उसमें न सिर्फ पानी है, बल्कि बर्फ भी मौजूद है। चन्द्रमा के उन इलाकों में मौजूद धूल में 0.5 प्रतिशत बर्फ और 2 प्रतिशत पानी की मौजूदगी हो सकती है। चन्द्रमा के ध्रुवीय क्षेत्रों में स्थित गड्ढों के कारण सूर्य की रोशनी गहराई तक नहीं पहुंच पाती, जिसके कारण

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

वहां अंधेरा रहता है। अतः अमरीका स्थित साउथवेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने इन हिस्सों का अध्ययन करने के लिए नासा के ल्यूनर रीकनाइसां ऑर्बाइटर सेटेलाइट के साथ दूरबीनों की बजाय एल.ए.ई. नामक विशेष प्रकाश तकनीक का सहारा लिया। माना जाता है कि हाइड्रोजन अणुओं की मदद से विसरित होने के कारण यह रोशनी अंधेरे स्थानों में भी पहुंच सकती है, जहां दूरबीन की पहुंच नहीं हो सकती।

हाल ही में नासा को शनि के बर्फीले चंद्रमा एनसेलादूस पर बर्फीली चट्टानों के नीचे एक विशाल समुद्र छिपा मिला है, जो संभवतः जीवन को समर्थन देने में सक्षम हो सकता है। नासा के कैसीनी अंतरिक्ष यान और डीप स्पेस नेटवर्क ने यह दिखाया है कि एनसेलादूस पर तरल जल का विशाल भूमिगत समुद्र है। अब वैज्ञानिकों को आशा है कि लगभग 30 से 40 किलोमीटर मोटी बर्फीली चट्टान के नीचे 10 किलोमीटर की गहराई पर कोई समुद्र हो सकता है।

नासा की इस खोज ने शनि के 62 चन्द्रमाओं में से सबसे बड़े इस चंद्रमा की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया है। यहां परग्रहीय सूक्ष्म जीवन के आसार मिल सकते हैं। कैसिनी ने जब 2005 में एनसेलादूस के दक्षिणी ध्रुव के छिद्रों से जलवाष्प निकलते देखी, तो अनुसंधानकर्ताओं ने वहां भूमिगत जलाशय की उपस्थिति का सिद्धांत पेश किया था। वैज्ञानिकों ने दक्षिणी ध्रुव पर उठने वाली जलवाष्प को बाघ की धारियों का नाम दिया है। कुछ युरोपीय इन्हें क्राइओवॉल्केनिज़्म के नाम से पुकारते हैं। इस वाष्प में कार्बनिक कण होने की बात भी कही गई है। नए आंकड़ों ने पानी को लेकर एनसेलादूस की आंतरिक संरचना के पहले भू-भौतिक आंकड़े प्रस्तुत कर दूसरे ग्रहों व उपग्रहों पर जीवन की संभावना को बल प्रदान किया है।

नासा के अंतरिक्ष जीव विज्ञान कार्यक्रम के वरिष्ठ वैज्ञानिक मैरी वॉयटे के अनुसार एनसेलादूस और यूरोपा की तुलना की जाए तो वर्तमान में एनसेलादूस की कोमल भूपर्पटी के कारण वहां जल और जीवन की प्रबल संभावना है। विलियम हर्शेल द्वारा वर्ष 1789 में खोजे गए एनसेलादूस नामक इस चन्द्रमा पर अब पानी की खोज वैज्ञानिक समुदाय को रोमांचित किए हुए है।

एनसेलादूस से पहले वर्ष 1995 में अंतरिक्ष यान गैलीलियो के माध्यम से वैज्ञानिकों ने बृहस्पति ग्रह के बर्फीले चन्द्रमा यूरोपा का अध्ययन कर बताया था कि यूरोपा पर पानी का विशाल भण्डार मौजूद है। शोधकर्ताओं ने बताया था कि बृहस्पति ग्रह के चन्द्रमा यूरोपा की बर्फीली परत के नीचे पानी, लवण और गैसें विचित्र भूवैज्ञानिक संरचनाओं को जन्म दे रही हैं।

वैज्ञानिकों को यकीन है कि यूरोपा पर तरल अवस्था में पानी मौजूद है और उसमें पृथ्वी पर जीवन के लिए आवश्यक तत्व भी उपस्थित हैं। वोयेजर और गैलीलियो मिशन से इसकी पुष्टि हो चुकी है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि सफेद रंग के हिमनदों के साथ लाल रंग का पदार्थ मौजूद है, जो वास्तव में मैग्नीशियम सल्फाइट के हाइड्रेटेड लवण हैं। वाष्पशील पदार्थों में कार्बन डाईऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड और हाइड्रोजन परॉक्साइड जैसे अस्थिर यौगिक पहचाने गए हैं। युरोपियन स्पेस एजेंसी बृहस्पति के बर्फीले चन्द्रमा पर वर्ष 2022 में अभियान भेजने की योजना बना रही है। उनका अंतरिक्ष यान वर्ष 2030 में यूरोपा पर पहुंच कर उसकी रहस्यमयी सतह की और अधिक जानकारी उपलब्ध कराएगा।

नासा के अंतरिक्ष यान रोवर क्यूरियोसिटी द्वारा लाल ग्रह मंगल से जुटाए गए नमूनों के विश्लेषण में पानी होने की संभावना पहले ही जताई जा चुकी है। क्यूरियोसिटी द्वारा मिट्टी के विश्लेषण से पता चला कि इस ग्रह की सतह पर मौजूद महीन पदार्थों में करीब 2 प्रतिशत पानी मौजूद है। नासा के वैज्ञानिकों के अनुसार, जब नमूनों को गर्म किया गया तो उसमें प्रभावी मात्रा में कार्बन डाईऑक्साइड, ऑक्सीजन और सल्फर होने की भी बात सामने आई। ज्ञात रहे कि मार्स रोवर क्यूरियोसिटी 6 अगस्त 2012 को मंगल ग्रह के एक क्रेटर में उतरा था। इस मिशन का उद्देश्य मंगल ग्रह पर जल और जीवन की संभावनाओं को तलाशना था।

सामान्यतः पानी के साथ जीवन को जोड़ा जाता है। मंगल ग्रह के साथ भी कुछ ऐसा ही है और वहां वैज्ञानिक जीवन और मंगलवासी होने की बात कहते रहे हैं। मंगल ग्रह को लेकर काफी संख्या में विज्ञान कथाएं लिखी जा चुकी हैं। कुछ वैज्ञानिक आशंका व्यक्त करते हैं कि मंगल पर जीवन तो नहीं है, मगर वहां गड्ढों में पाए गए संकरे उभार ग्रह की सतह के नीचे मौजूद दरारों के अवशेष हो सकते हैं। ब्राउन युनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं के अनुसार, कभी इन दरारों से मंगल पर पानी बहा करता था। प्राचीन मंगल की सतह के नीचे पानी बहना वहां जीवन की संभावना को बल प्रदान करता है। जर्नल *ज़ियोफिज़िकल रिसर्च लेटर्स* में प्रकाशित एक अध्ययन इस बात को प्रमाणित करता है कि मंगल की

सतह के नीचे कभी सक्रिय जलतंत्र था और यह प्राचीन काल में जीवन के प्रमाण तलाशने के लिए अच्छी जगह हो सकती है। ली सैपर और जैक मस्टर्ड के अध्ययनों के अनुसार, मंगल पर मौजूद संकरे उभार सैकड़ों मीटर लंबे और कुछ मीटर चौड़े हैं। पूर्व के शोधों में भी इनसे प्रमाण मिल चुके हैं, लेकिन ये कैसे बने इसका कारण पक्का नहीं है।

उधर मंगल ग्रह के अभियान पर गए नासा के रोवर अपॉरच्युनिटी के नए साक्ष्यों के अनुसार मंगल ग्रह पर लगभग चार अरब वर्ष पहले जीवन के लिए ताज़ा पानी मौजूद था। 24 जनवरी 2004 को मंगल ग्रह की धरती पर उतरे अपॉरच्युनिटी ने मंगल ग्रह पर मैटिजेविक हिल नामक स्थान पर खुदाई के दौरान वहां चट्टानों के विश्लेषण से ये आंकड़े पृथ्वी पर भेजे हैं। अध्ययन दल के रे एर्विडसन के अनुसार, इससे पहले के मिशन में जिन चट्टानों का परीक्षण किया गया है, उनके मुकाबले यह चट्टान अधिक पुरानी है। इस चट्टान में सूक्ष्मजीवीय जीवन के साक्ष्य अधिक बेहतर स्वरूप में मौजूद होंगे।

नासा के जॉन कोनोली के अनुसार मंगल ग्रह पर पानी की खोज मानव के दृष्टिकोण में बड़ा परिवर्तन लाएगी और यह बेशक एक बड़ी उपलब्धि होगी जो हमारे भविष्य के अभियानों को और आसान बना देगी। मंगल पर जीवन के बारे में वैज्ञानिक आज भी आशावान हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार धरती पर लौह और सल्फर की अधिकता वाले सांद्र अम्लों में सूक्ष्मजीवीय समुदाय की मौजूदगी पाई गई है। उदाहरण के लिए स्पेन के रियो टिंटो में ऐसे रक्त रंजित तेज़ाबी पानी में अनेक सूक्ष्मजीव फल-फूल रहे हैं। बिलकुल ऐसे ही लौह और सल्फर युक्त वातावरण के साक्ष्य मंगल पर पाए गए हैं, जो वहां सूक्ष्मजीवीय जीवन की संभावना को बल देते हैं। अब तक अपॉरच्युनिटी द्वारा पृथ्वी पर मंगल ग्रह की 1,28,000 से अधिक तस्वीरें भेजी जा चुकी हैं। वैज्ञानिक इनका गहन अध्ययन कर रहे हैं।

सामान्यतः समझा जाता है कि गर्म ग्रहों पर पानी नहीं हो सकता, लेकिन वैज्ञानिकों ने इसे गलत साबित कर दिया है। नासा के एक अंतरिक्ष यान ने बेहद गर्म बुध ग्रह पर स्थाई और छायादार ध्रुवीय गड्ढों में बर्फीले पानी के साथ-साथ कुछ ऐसे जमे हुए पदार्थ खोज निकाले हैं, जो वाष्पशील हैं। नासा का मैसेंजर नामक अंतरिक्ष यान सूर्य के सबसे पास के ग्रह बुध पर मार्च 2011 में पहुंच कर अध्ययन कर रहा है।

नासा ने बताया है कि वैज्ञानिकों ने पहली बार यह स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी समेत अन्य आंतरिक ग्रह पानी और जीवन के लिए ज़रूरी कुछ अन्य रासायनिक कारकों को कैसे प्राप्त करते हैं। बुध ग्रह पर तापमान 427 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच सकता है, लेकिन स्थाई रूप से सूरज की गर्मी से बचा हुआ क्षेत्र उत्तरी ध्रुव पर जमे हुए पानी के साथ कार्बनिक पदार्थों का मिश्रण पाया जाना बेहद रोमांचकारी है, जहां का तापमान -173 डिग्री सेल्सियस रहता है। इसी क्षेत्र के ऊपर 85 डिग्री आक्षांश से बर्फीले विवर दिखाई दिए हैं।

सौरमण्डल के बाहर भी कई आकाशीय पिण्डों पर वैज्ञानिक पानी की उपस्थिति के प्रमाण जुटा चुके हैं लेकिन वहां का पानी क्या धरती जैसा होगा और भविष्य में हमारे किसी काम आ सकेगा? ये तो आने वाला समय ही बताएगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

14 मई से पूर्व प्रकाशित न करें **Website : www.eklavya.in**

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

जलवायु

तेज़ी से बढ़ रहे हैं गर्मी के जानलेवा हमले

संध्या रायचौधरी

आने वाले समय में मौसम में बहुत तेज़ी से परिवर्तन होगा जिसका सबसे ज़्यादा असर गर्मी के महीनों में दिखाई देगा। एक ताज़ा शोध बताता है कि पिछले 15 सालों से विश्व भर में ग्लोबल वार्मिंग की दर घटने के बावजूद जानलेवा गर्मी पड़ने की घटनाएं लगातार बढ़ी हैं। असहनीय होती गर्मी से अब पहले से कहीं ज़्यादा जानें जा रही हैं।

दुनिया के कई हिस्सों में गर्मी के मौसम में पारे का जानलेवा स्तर तक पहुंचना भी जलवायु परिवर्तन का एक चेहरा है। इससे इंसान भी मारे जा रहे हैं और कई फसलें भी खराब हो रही है। ऊर्जा से लेकर पानी तक हर संसाधन पर दबाव बढ़ा है। कई देशों के वैज्ञानिकों ने मिलकर *नेचर क्लाइमेट चेंज* नामक जर्नल में लिखा है कि डैटा दिखाता है कि ग्लोबल वार्मिंग के इस अंतराल में धरती पर गर्मी के अतिरेक के मामले लगातार बढ़े हैं।

2012 में रूस में चली लू की चपेट में आकर 25 हज़ार से ज़्यादा लोग मारे गए थे, वहीं 2010 में युरोप में भी गर्म हवाओं से करीब 20 हज़ार से ज़्यादा लोगों की जानें गई थीं। पिछले साल पाकिस्तान में पारा 55.5 डिग्री सेल्सियस तक चला गया था। 1942 के बाद यह एशिया में दर्ज किया गया सबसे ज़्यादा तापमान है।

वैज्ञानिकों के मुताबिक 20वीं सदी की तुलना में अब धरती की सतह के गर्म होने की औसत गति कम हुई है। समुद्रों के ज़्यादा गर्मी सोखने, सूरज की किरणों को धरती पर पहुंचने से रोकने वाला प्रदूषण और कम ज्वालामुखी विस्फोट इसके प्रमुख कारण बताए जा रहे हैं। बीते सालों में कई देशों ने कोयला या पेट्रोलियम जैसे जीवाश्म ईंधन से सौर ऊर्जा जैसे अक्षय ऊर्जा के स्रोतों की तरफ रुख किया है।

रिपोर्ट के मुताबिक धरती के जिन इलाकों में साल में 10, 30 और 50 दिन बहुत ज़्यादा गर्मी पड़ती है, उनकी संख्या 1997 से लगातार बढ़ती गई है। आर्कटिक जैसे कई क्षेत्रों में बीते सालों में यह संख्या साल दर साल दुगनी दर से बढ़ी है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस बात पर लगातार शोध किए जा रहे हैं कि आखिर गर्मी के जानलेवा थपेड़ों के बढ़ने का क्या कारण है। उनके अनुसार एक संभावना यह है कि समुद्रों ने वायुमंडल से गर्मी को सोख कर ग्लोबल वार्मिंग की दर को तो कम कर दिया है लेकिन धरती पर उसका कोई खास असर नहीं पड़ा है। शोध की प्रमुख लेखिका सोनिया सेनविरात्ने लिखती हैं कि इस अत्यधिक गर्मी की प्रवृत्ति के रुकने की कोई वजह हमें नहीं दिखाई दे रही है। शायद वायुमंडल में गैसों का लगातार बढ़ना एक वजह हो सकती है। ज्यूरिख के इंस्टीट्यूट फॉर एटमॉस्फेयरिक एंड क्लाइमेट साइंस की इस रिपोर्ट में ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन से मौसम पर पड़ रहे असर का भी ज़िक्र है। पिछले साल विश्व मौसम संगठन की समीक्षा में कहा गया था कि दुनिया के 56 देशों में 2001 से 2012 के बीच गर्मी के नए रिकार्ड बने जबकि सिर्फ 14 देशों में सर्दी ने रिकॉर्ड तोड़े।

जलवायु परिवर्तन करने वाली खतरनाक ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में रिकॉर्ड इज़ाफा हुआ है। डब्ल्यूएमओ के मुताबिक पृथ्वी के वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा 141 फीसदी बढ़ चुकी है। आर्थिक मंदी और कुछ देशों द्वारा उत्सर्जन कम करने के बावजूद वैश्विक तस्वीर देखें तो हमारे वातावरण में कॉर्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता बढ़ते हुए रिकॉर्ड स्तर पर जा रही है।

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

वैज्ञानिक मौजूदा स्थिति की तुलना 1750 (औद्योगिकरण की शुरुआत) से पहले के समय से करते हैं। पश्चिमी देशों में इसके बाद ही कारखाने लगने शुरू हुए थे। औद्योगिकरण से पहले की तुलना में आज वातावरण में 141 फीसदी ज़्यादा कार्बन डाईऑक्साइड है। मीथेन की मात्रा 260 फीसदी और नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा 120 फीसदी बढ़ी है। साफ है कि मौजूदा हालात में ग्लोबल वॉर्मिंग बढ़ने से नहीं रोका जा सकता है।

विशेषज्ञों ने चेतावनी दी है कि अगर ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम नहीं किया गया तो इंसान लाचार होकर बार-बार बड़े तूफान, लुप्त होते जीव, कम होता पानी, डूबती ज़मीन और पिघलती बर्फ देखेगा। कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी के समुद्र विज्ञानी पीटर वैडहैम्स कहते हैं, इसका असर अगले 100 साल तक दिखाई पड़ेगा। लंबे समय से जीवाश्म ईंधन के अथाह इस्तेमाल की कीमत हमें चुकानी होगी। हो सकता है कि हम ग्लोबल वॉर्मिंग को आपदा में बदलने से रोक पाने वाली सीमा के भी पार आ गए हैं। वैडहैम्स के मुताबिक अब अगर कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन कम भी किया जाए तो भी बात नहीं बनने वाली। बीते 10 सालों को ही देखा जाए तो 2011 और 2012 में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा औसत से ज़्यादा तेज़ी से बढ़ी है। आशंका है कि यह रफ्तार 2015-16 तक जारी रहेगी। पश्चिमी युरोप, जापान और अमरीका के अलावा बाकी दुनिया अभी आर्थिक और औद्योगिक तौर पर पिछड़ी हुई है। एक के बाद एक देश उद्योगों के ज़रिए बराबरी की कोशिश कर रहे हैं। विशेषज्ञों को लगता है कि आर्थिक तरक्की की इस दौड़ में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाना मुश्किल है। आशंका है कि इस शताब्दी के अंत तक धरती का तापमान 4.6 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाएगा।

पश्चिमी अंटार्कटिका जितना माना गया था उससे दुगनी रफ्तार से गर्म हो रहा है। इस जानकारी ने यह चिंता बढ़ा दी है कि सैन फ्रांसिस्को से शंघाई तक सागर में पानी का स्तर और बढ़ेगा, जो ज़मीन को डुबो देगा। एक रिसर्च की रिपोर्ट बताती है कि अंटार्कटिका के बार्ड रिसर्च स्टेशन में सालाना औसत तापमान 1950 के दशक के बाद से अब तक 2.4 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ चुका है। रिपोर्ट के मुताबिक विश्व औसत की तुलना में अंटार्कटिका में तापमान तीन गुना ज़्यादा प्रभावित हुआ है।

इस वृद्धि ने बर्फ पिघलने का डर बढ़ा दिया है। अगर पश्चिमी अंटार्कटिका की सारी बर्फ पिघल जाए तो समुद्र का जल स्तर 3.3 मीटर बढ़ जाएगा। वैसे इस पूरे बर्फ को पिघलने में कई सदियां लगेंगी। ओहायो युनिवर्सिटी ने बताया है कि बर्फ की पट्टी का पश्चिमी हिस्सा उम्मीद से दुगनी गर्मी झेल रहा है। गर्मियों में जब तापमान बढ़ता है तो अंटार्कटिका में बर्फ की चादर पिघलती है। यह हालत तब है जबकि पूरे साल अंटार्कटिका के ज़्यादातर हिस्से का तापमान बेहद ठंडा रहता है। बांग्लादेश से लेकर तुवालु तक के लिए समुद्र में जल स्तर बढ़ने का मतलब खतरा है। पिछली सदी में समुद्र का जलस्तर करीब 20 सेंटीमीटर बढ़ा है। संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण जानकारों के पैनल का अनुमान है कि अगर ग्रीनलैंड और अंटार्कटिका में बर्फ पिघली तो इस सदी में समुद्र का तल 18-59 सेंटीमीटर तक बढ़ेगा।

उत्तरी गोलार्ध के हिस्से भी तेज़ रफ्तार से गर्म हुए हैं। अंटार्कटिक प्रायद्वीप में किनारों पर मौजूद कई हिमखंड हाल के वर्षों में टूट कर पिघल गए हैं। एक बार ये हिमखंड पिघल जाएं तो उनके पीछे के ग्लेशियर भी समुद्र में आ मिलते हैं और जल स्तर बढ़ जाता है। पश्चिमी अंटार्कटिका के लिए पाइन आइलैंड ग्लेशियर उतना ही पानी समुद्र में लेकर आता है जितना कि युरोप की राइन नदी लेकर आती है।

पश्चिमी अंटार्कटिका में बड़े स्तर पर सतह के पिघलने का एक उदाहरण 2005 में सामने आया था। गर्मियों में बढ़ता तापमान इस तरह से सतहों के बार-बार और बड़े स्तर पर पिघलने की घटनाएं दोहरा सकता है। पश्चिमी अंटार्कटिका हर साल समुद्र के जल स्तर में 0.3 मिलीमीटर इज़ाफा कर रहा है। यह ग्रीनलैंड के 0.7 मिलीमीटर की तुलना में कम है।

मौसमी बदलाव ने भले ही दुनिया की सेहत खराब कर दी हो लेकिन आर्कटिक क्षेत्र में यह जहाज़ उद्योग के लिए वरदान साबित हो सकता है। यहां बर्फ की जो मोटी तहें पिघल रही हैं, उनसे जहाज़ों के लिए युरोप से नए रास्ते खुल सकते हैं और आर्थिक ताकत का भी नया समीकरण बन सकता है क्योंकि अगर नॉर्वे और रूस के बीच इधर से जहाज़ चलने लगें, तो तेल और प्राकृतिक गैस के परिवहन में नया आयाम जुड़ सकता है।

विश्व मौसम संस्थान के मुताबिक इस साल सितंबर तक 34 लाख वर्ग कि.मी. बर्फ पिघल गई है, जो 2007 के बाद सबसे ज़्यादा है। यह खतरनाक है मगर आर्थिक फायदा देखने वाले इसे जहाज़ उद्योग के लिए एक मौके के तौर पर देख रहे हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

Website : www.eklavya.in

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

बेअसर होती एंटीबॉयोटिक दवाएं

प्रमोद भार्गव

एंटी बायोटिक दवाओं को लेकर अर्से से जताई जा रही चिंता ने अब गंभीर रूप ले लिया है। हाल ही में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपनी एक रिपोर्ट में एंटीबायोटिक दवाओं के विरूद्ध पैदा हो रही प्रतिरोधत्मक क्षमता को मानव स्वास्थ के लिए एक वैश्विक खतरे की संबा दी है। इस रिपोर्ट से साफ हुआ है कि चिकित्सा विज्ञान के नए□नए आविष्कार और उपचार के अत्याधुनिक तरीके भी इंसान को खतरनाक बीमारियों से छुटकारा नहीं दिला पा रहे हैं। चिंता की बात यह है कि जिन महामारियों के दुनिया से समाप्त होने का दावा किया गया था,वे फिर आक्रामक हो रही है। तय है,मानव जीवन के लिए हानिकारक जिन सूक्ष्म जीवों को नष्ट करने की दवाएं ईजाद की गई थीं,वे रोगनाशक साबित नहीं हुई। अलबत्ता डब्ल्यूएचओ में सहायक महानिदेशक डॉ कीजी फुकुदा का दावा है कि दुनिया ऐसे भयानक अंधकार की ओर बढ रही है,जहां समान्य बीमारियां भी जानलेवा साबित होंगी।

डब्ल्यूएचओ ने 114 देशों से जुटाए गए आकडों का विश्लेषण करते हुए रिपोर्ट में कहा है कि यह प्रतिरोधक क्षमता दुनिया के हर कोने में दिख रही है। रिपोर्ट में एक ऐसे पोस्ट एंटीबायोटिक युग की आशंका जताई गई है,जिसमें लोगों के सामने फिर उन्हीं सामान्य संक्रमणों के कारण मौत का खतरा होगा,जिनका पिछले कई दशकों से इलाज संभव हो रहा है। रिपोर्ट निमोनिया,डायरिया और रक्त संक्रमण का कारण बनने वाले सात अलग□अलग जीवाणुओं पर केंद्रित है। रिपोर्ट के अनुसार अध्ययन में शामिल आधे से ज्यादा लोगों पर दो प्रमुख एंटीबायोटिक का प्रभाव नहीं पडा। स्वाभाविक तौर पर जीवाणु धीरे□धीरे एंटीबायोटिक के विरूद्ध अपने अंदर प्रतिरक्षा क्षमता पैदा कर लेता है,लेकिन इन दवाओं के हो रहे अंधाधुंध प्रयोग से यह स्थिति अनुमान से कहीं ज्यादा तेजी से सामने आ रही है। चिकित्सकों द्वारा इन दवाओं की सलाह देना और मरीज की ओर से दवा की पूरी मात्रा न लेना इसकी प्रमुख वजह है। डॉ फुकुदा का मानना है कि जब तक हम संक्रमण रोकने के बेहतर प्रबंधन के साथ एंटीबायोटिक के निर्माण,निर्धारण और प्रयोग की प्रक्रिया को नहीं बदलेंगे,यह खतरा बना रहेगा। इंग्लैण्ड के प्राध्यापक डेम सैली डेविस ने इस खतरे को ग्लोबल वार्मिंग के जितना ही भयावह बताया है।

वैज्ञानिकों ने एंटीबायोटिक दवाओं की खोज करके महामरियों में पर एक तरह से विजय□पताका फहरा दी थी। लेकिन चिकित्सकों ने इन दवाओं का इतना ज्यादा प्रयोग किया कि बीमारी फैलाने वाले सूक्ष्मजीवों ने प्रतिरोधात्मक दवाओं के विपरीत ही प्रतिरोधात्मक शक्ति हासिल कर ली। मसलन तुम डाल□डाल तो हम पात□पात। मानव काया में सूक्ष्मजीव भरे पडे हैं। हालांकि सभी सूक्ष्मजीव हानिकारक नहीं होते,कुछ पाचन क्रिया के लिए लाभदायी भी होते हैं। प्राकृतिक रूप से हमारे शरीर में 200 किस्म के ऐसे सूक्ष्मजीव डेरा डाले हुए हैं,जो हमारे प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत व शरीर को निरोगी बनाए रखने का काम करते हैं। लेकिल ज्यादा मात्रा में खाई जाने वाली एंटीबायोटिक दवाएं इन्हें नष्ट करने का काम करती हैं।

एंटीबायोटिक दवाओं की खोज मनुष्य जाति के लिए ईश्वरीय वरदान साबित हुई थी। क्योंकि इनसे अनेक

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संक्रामक रोगों से छुटकारा मिलने की उम्मीद बंधी थी। मगर जैसे ही संक्रामक रोगों से लडने के लिए एंटीबायोटिक दवाओं का इस्तेमाल शुरू हुआ,वैज्ञानिकों ने पाया कि पुराने सूक्ष्मजीवों ने अपना रूपांतरण कर लिया है। यानी पेंसिलीन की खोज एक क्रांतिकारी खोज थी,किंतु वैज्ञानिकों ने देखा कि कुछ ऐसे सूक्ष्मजीव सामने आए हैं, जिन पर पेंसिलीन भी बेअसर है। सूक्ष्मजीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी यंत्र से ही देखा जा सकता है।

जीवाणु और वीषाणु सूक्ष्मजीवों के ही प्रकार हैं, जो किसा भी कोशिका में पहुंचकर शरीर को नुकसान पहुंचाना शुरू कर देते हैं। ये हमारी त्वचा,मुंह,नाक और कान के जरिए शरीर में प्रवेश करते हैं। फिर एक से दूसरे व्यक्ति में फैलने लगते हैं। इसीलिए अब चिकित्सक सलाह देने लगे हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के बीच एक हाथ की दूरी बनी रहनी चाहिए। किसी का जूठा नहीं खाना□पीना चाहिए। वैसे हमारी त्वचा सूक्षम जीवों को रोकने का काम करती है और जो शरीर में धुस भी जाते है,उन्हें एंटीबायोटिक मार डालते हैं। एक समय तक संक्रात्मक रोगों को फैलने में एंटीबायोटिक दवाओं ने अंकुश लगा रखा था। इसके पहले खासतौर से भारत समेत अन्य एशियाई देशों के अस्पताल संक्रामक रोगियों से भरे रहते थे और चिकीत्सक मरीजों को बचा नहीं पाते थे। निमोनिया और डायरिया के रोगियों को भी बचाना मुश्किल था। चोट लगने पर टिटनेस और सेप्सिस की चपेट में आए मरीजों की मौत तो निश्चित थी।

1940 से 1980 के बीच बडी मात्रा में असरकारी एंटिबायटिकों की खोज हुई,नतीजतन स्वास्थ्य लाभ के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। किंतु 1980 के बाद कोई बढी खोज नहीं हुई,जबकि पूरी दुनिया में इस दौरान चिकित्सा शिक्षा संस्थागत ढांचे के रूप में ढल चुकी थी। आविष्कार में उपयोगी माने जाने वाले उपकरण भी शोध संस्थानों में आसानी से उपलब्ध थे। 1990 में एक नई किस्म की एंटीबायोटिक की खोज जरूर हुई,मगर बजार में जो भी नई दवाएं आई,वे हकीकत में पुरानी दवाओं के ही नए संस्करण थे। विडंबना है कि नई एंटीबायोटिक दवाएं विकसित नहीं हो रही हैं, जबकि ताकतवार नए□नए सूक्ष्मजीव सामने आ रहे हैं। इन सूक्ष्मजीवों ने मौजूद दवाओं की सीमाएं चिन्हित कर दी हैं। जाहिर है इस पृष्ठभूमि में संक्रामक रोगों का खतरा बढ रहा है। हाल ही में अस्तित्व में आया सुपरबग एक ऐसा ही सूक्ष्म जीव है। इस परिप्रेक्ष्य में विश्व स्वास्थ्य संगठन की यह रिपोर्ट दुनिया के लिए एक खतरे की धंटी है। लिहाजा इस दिशा में वैश्विक स्तर पर असरकारी पहल करने की जरूरत है।

सुपरबग यानी महाजीवाणु 2010 में चर्चा में आया था,जो दिल्ली में पाया गया था। इस जीवाणु का नामकरण ही नई दिल्ली के नाम पर 'न्यू दिल्ली मेटिलो□बीटा लेक्टामासे □1'रखा गया है। बताया गया है कि इसका जन्म भारत,पाकिस्तान और बांग्लादेश में हुआ है। इस महाजीवाणु के खोजी दलों में एक भारतीय वैज्ञानिक का नाम भी था,लेकिन अपरिहार्य कारणों से उसने निष्कर्ष की टोली से अपने को अलग कर लिया। लेकिन जो खास बात है, वह यह है कि इस सुपरबग पर उपलब्ध कोई भी एंटीबायोटिक दवा काम नहीं करती। इस जीवाणु के कारण पेशाब की नली में संक्रमण होता है। इसकी पहचान का यही चिकीत्सीय लक्षण है। भारत में साफ पानी और शौच के उचित प्रबंध नहीं हैं,इसलिए चिकित्सा विज्ञानियों को आशंका है कि यह महाजीवाणु भारत में कहर ढा सकता है।

इसी से मिलता□जुलता एक और महाजीवाणु है,एमआरएसए नामक जीवाणु को माना जाता है,जो त्वचा और नाक से भीतर घुसकर हरकत में आ जाता है। इससे त्वचा,मासूम उतकों,हड्डियों फेफडों और हृदय के वॉल्व में संक्रामक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस पर नियंत्रण के लिए मेथिसीलीन नामक दवा का प्रयोग शुरू किया गया था। परंतु धीरे□धीरे सुपरबग ने इसके विपरीत प्रतिरोधात्मक क्षमता विकसित कर ली है। यूरोपीय देशों में एमआएसए की वजह से होने वाले संक्रामक रोगों से लडने में आज अरबों रूपए की राशि खर्च हो रही है,लेकिन कारगर परिणाम सामने नहीं आ रहे हैं। नतीजतन अमेरिका जैसे विकसित देश में हर साल हजारों मौतें हो रही हैं।

प्रकृति ने मनुष्य को बीमारियों से बचाव के लिए शरीर के भीतर ही मजबूत प्रतिरक्षात्मक तंत्र दिया है। इन्हें श्वेत एवं लाल रक्त कणिकाओं के माध्यम से जाना जाता है। इसके अलावा रोग□रोधी एंजाइम लाइफोजाइम भी होता है, जो जीवाणुओं को नष्ट कर देता है। एंटीबायोटिक दवाओं ने जहां अनेक संक्रामक रोगों से मानव जाति को बचाया,वहीं दुष्परिणामस्वरूप शरीर की प्रतिरोधात्मक शक्ति को कमजोर भी किया। जिस तरह मानव शरीर विभिन्न प्राकृतिक तापमान,वायुमंडल व भौगोलिक परिस्थिति और पर्यावरण के अनुकूल अपने को ढाल लेता है,उसी तरह से हमारे धरती पर अस्तित्व के समय से

ही सूक्ष्मजीव और उनके विरूद्ध शरीर की प्राकृतिक प्रतिरोधात्मक शक्ति का भी परिवर्तित विकास होता रहा है।

कुदरत का कमाल देखिए एंटिबायोटिक दवाओं ने दोनों के बीच के संतुलन को गडबडा दिया,लिहाजा एंटीबायोटिक दवाएं जब□जब सूक्ष्मजीवों पर मारक साबित हुई, तब□तब जीवाणु और वीषाणुओं ने अपने को ओर ज्यादा शक्तिशाली बना लिया। गोया,महाजीवाणु कभी न नष्ट होने वाले रक्तबीजों की श्रेणी में आ गए हैं। इसलिए आज वैज्ञानिकों को कहना पड रहा है कि एंटीबायोटिक दवाओं की मात्रा पर अंकुश लगना चाहिए। दवा कंपनियों की मुनाफे की हवस और चिकित्सकों का बढता लालच, इसमें बाधा बने हुए हैं। चिकित्सक सर्दी□जुकाम और पेट के साधारण रोगों तक के लिए बडी मात्रा में एंटीबायोटिक दवाएं दे देते हैं। ऐलोपैथी चिकित्सा पद्धति के मुनाफाखोरों ने प्रायोजित शोधों के मार्फत आयुर्वेद,यूनानी,प्राकृतिक चिकित्सा और होम्योपैथी को अवैज्ञानिक कहकर हाशिए पर डालने का काम भी षड्यंत्रपूर्वक किया है। लेकिन सूक्ष्मजीव नए□नए कायातंरण कर नए□नए रूपों में सामने आना शुरू हो गए हैं,तब से एंटीबायोटिक दवाओं की सीमा रेखांकित की जाने लगी है और वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियां फिर से जोर पकडने लगी हैं। बेशुमार एंटीबायोटिक दवाओं की मार से बचने का यही एक कारगर उपाय है कि वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों को लोग अपनाए।

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

बढ़ता ही रहेगा पृथ्वी का तापमान

डॉ. महेश परिमल

पूरे विश्व में मौसम तेज़ी से बदल रहा है। असमय बारिश और बाढ़, भीषण गर्मी, कड़ाके की ठंड आदि के नज़ारे में मौसम में न होकर कभी भी दिखने लगे हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह सब पृथ्वी के तापमान बढ़ने के कारण हो रहा है। यदि वराहमिहिर के ग्रंथ को आधार मानें, तो ज्योतिषियों का कहना है कि सन 2026 तक पृथ्वी का तापमान इसी तरह बढ़ता ही रहेगा। वैज्ञानिक इस सम्बंध में एकमत नहीं हैं। आखिर मौसम में इतनी तेज़ी से इतनी तब्दीली क्यों आ रही है? पर इतना तो सच है कि मानव ने पृथ्वी को विनाश के कगार पर पहुंचा दिया है। हरियाली खत्म कर वह कांक्रीट के जंगल बिछा रहा है। पर्यावरण के लिए आज सबसे बड़ा खतरा मानव ही है। वह समझ ही नहीं पा रहा है कि पृथ्वी का इतना अधिक दोहन के बाद आखिर बचेगा क्या? पानी इस समय रसातल में चला गया है। जल स्रोत सूख रहे हैं। हरियाली का नामो-निशान नहीं है। पृथ्वी को बचाने के उपाय ऊंट के मुंह में ज़ीरा साबित हो रहे हैं। जब तक पर्यावरण का नाश करने वालों को कड़ी से कड़ी सजा नहीं मिलेगी, तब तक कुछ भी सकारात्मक नहीं होने वाला। पर्यावरण को गंभीरता से लेकर इसका विनाश करने वाले को गंभीर अपराध माना जाए, तभी इस दिशा में कुछ सकारात्मक होना संभव है। अभी तक हमारे देश के कानून में पर्यावरण का नाश करने वाले पर जो कार्यवाही होती है, वह इतनी अधिक लचर है कि कोई उससे सबक लेने को तैयार ही नहीं है।

दुनिया का मौसम आखिर क्यों बदल रहा है? इस सम्बंध में वैज्ञानिकों में मत-मतांतर है। कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि कार्बन डाइऑक्साइड जैसे ग्रीन हाउस गैसों की उत्पत्ति बढ़ने के कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है और ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ पिघलने के कारण समुद्र की सतह ऊपर आ रही है। कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि ठंडी और गर्मी प्रकृति का नियम है। इस पृथ्वी पर भूतकाल के हिमयुग के बाद अब उष्णता का युग आ रहा है। कुछ ज्योतिषशास्त्री कहते हैं कि पृथ्वी के बढ़ रहे तापमान का सम्बंध ग्रहों के परिभ्रमण से है। उनका मानना है कि वर्तमान में ग्रहों का परिभ्रमण जिस तरह से हो रहा है, उससे पृथ्वी का तापमान और बढ़ने की आशंका है।

हमारे देश में प्राचीन काल में हुए महान ज्योतिर्विद वराहमिहिर द्वारा लिखे गए ग्रंथों के आधार पर अमेरिका में नियोवैदिक एस्ट्रालॉजी नामक नई शाखा शुरू की गई है। इस शाखा के संस्थापक रिचर्ड हॉक एस्ट्रोलाजर थे। उन्होंने भारत के प्राचीन ज्योतिषशास्त्र का आद्योपांत अध्ययन कर उसका उपयोग अमेरिकी जनता को मार्गदर्शन देने के लिए किया। इनके शिष्य क्रिस्टोफर केविल ने ज्योतिषियों की दृष्टि से ग्लोबल वार्मिंग के बारे में एक गहरा शोध किया और अनेक परिणाम निकाले। भारत के प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन कर क्रिस्टोफर ने ऐसी भविष्यवाणियां की है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि सन 2026 तक पृथ्वी का तापमान बढ़ता ही रहेगा और पृथ्वी पर कई तरह की तबाही देखने को मिलेंगी। मौसम विज्ञानियों के अनुसार दुनिया में 20 हज़ार वर्ष पहले हिमयुग की समाप्ति हुई थी। उसके बाद पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ रहा है। इसमें बीच-बीच में उष्ण और शीत युग भी आ जाते हैं। यूरोप के इतिहास के अनुसार 21वी सन में 900 से 1300 के बीच दुनिया में उष्णता बढ़ी इसके कारण ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ पिघलकर आइसलैंड और ग्रीनलैंड जैसे प्रदेश बने। इसके बाद करीब 200 वर्षों तक पृथ्वी का

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

तापमान समशीतोष्ण रहा। सन 1500 में पूरी दुनिया में एक तरह से मिनी शीतयुग शुरू हुआ, जो 1850 तक चला रहा। इस मिनी शीतयुग में यूरोप की अनेक नदियां जम गईं थी और दुनिया में खेतों में होने वाले उत्पादन प्रभावित हुआ था। अनाज की कमी और भुखमरी के हालात पैदा हो गए। इसके बाद विश्व में मशीनी युग का प्रारंभ हुआ। इस बाद से तापमान में लगातार वृद्धि होते गई। इस परिवर्तन का सम्बंध ग्रहों की स्थिति के साथ है ऐसा क्रिस्टोफर का दावा है।

क्रिस्टोफर केविल कहते हैं कि वातावरण में लंबे समय से परिवर्तन चल रहा है। इस सम्बंध प्लूटो ग्रह के साथ है और बहुत ही जल्द इन परिवर्तनों का कारण शनि का परिभ्रमण है। सन 900 से 1200 के दौरान पृथ्वी के तापमान में जो वृद्धि हुई, उसका कारण प्लूटो का परिभ्रमण था। लंदन की गणना करें तो सन 846 की 18 जनवरी को प्लूटो ने मेष राशि में प्रवेश किया था। इस समय मंगल प्लूटो के सामने चार डिग्री का कोण बना रहा था। मंगल की गणना गर्म ग्रह के रूप में होने से इन 300 वर्षों में गर्मी अधिक बढ़ी। क्रिस्टोफर केविल के अनुसार इस दौरान जो गर्मी थी, उसे प्लस 4 पाइंट दिया जा सकता है। हमारी दुनिया में वर्तमान मशीनीयुग का प्रारंभ 1850 में शुरू हुआ था। तीन मार्च सन 1823 में प्लूटो ने फिर मेष राशि में प्रवेश किया, तब से पूरी दुनिया में कारखानों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। कार्बन डाइऑक्साइड जैसे रासायनिक तत्व वायुमंडल में शामिल हो रहे हैं, इससे भी गर्मी बढ़ रही है। इस घटना का सम्बंध भी प्लूटो के परिभ्रमण के साथ है। इस कालखंड में मीन राशि का सूर्य और मंगल की युति होती है, जिसके कारण पृथ्वी के तापमान में प्लस 3 पाइंट वृद्धि हो सकती है। इस काल में चंद्र गर्म माने जाने वाली वृश्चिक राशि में है, और वह थोड़ा गर्म माने जाने वाले गुरु के सामने है, इस कारण जो कुल गर्मी पैदा हो रही है, उसे हम प्लस 4 पाइंट दे सकते हैं। इस तरह से ग्रहों की गति के हिसाब से 1850 के बाद पृथ्वी के तापमान में लगातार वृद्धि होती गई है।

सन 1900 से 1940 के दौरान पृथ्वी के तापमान में औसतन 0.4 डिग्री सेल्सियस वृद्धि हुई थी। इसके बाद 1940 से 1970 के दौरान शनि का 30 वर्ष का चक्र होने के कारण तापमान में 0.2 डिग्री की कमी आई। शनि का मेष राशि में आगमन से 14 जनवरी 1938 में हुआ था। इस दौरान शनि पर शुक्र और चंद्र का प्रभाव था। उसके बाद चंद्र मिथुन और शुक्र मकर में था। ये दोनों ग्रह ठंडे माने जाते हैं। इसलिए पृथ्वी के तापमान में कमी आई। इसके बाद सूर्य भी मकर में होने के कारण तापमान में 4 पाइंट की कमी आई। 1957 से 1996 तक शनि के कारण गर्मी का इंडेक्स प्लस 3 था। पर 1995 से 2026 तक ग्रहों की स्थिति के कारण यह इंडेक्स बढ़कर प्लस 8 हो जाएगा। इस दौरान मेष राशि में सूर्य की और शनि की युति हो रही है, जिसके कारण गर्मी बढ़ जाएगी। चंद्र गर्म माने जाने वाली धनु राशि में प्लूटो के साथ होने से भी गर्मी के बढ़ने की पूरी संभावना है। इस तरह से देखा जाए, तो ग्रहों की स्थिति वातावरण को प्रभावित कर रही है। वैज्ञानिक भले ही ग्लोबल वार्मिंग की वजह अन्य कारण भी बता रहे हों, पर यह भी सच है कि जिस तरह से ग्रह इंसानों की गति को नियंत्रित करते हैं, ठीक उसी तरह से मौसम को भी प्रभावित करते हैं। वैज्ञानिक धारणाएं जो भी हो, पर सच तो यही है कि पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है और इसके पीछे मानव की भूख है। वह प्रकृति को नष्ट करके प्रकृति के साथ रहना चाहता है, जो संभव नहीं है। प्रकृति के साथ रहना है तो उसका संरक्षण किया जाना आवश्यक है। प्रकृति संरक्षित रहेगी, तभी मानव भी संरक्षित रहेगा।

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

स्लॉथ, काई, फफूंद और पतंगे
सहजीविता का एक अनोखा उदाहरण
एक अनोखी सहजीविता

डॉ. अरविन्द गुप्ते

प्रकृति में जीवधारियों के आपसी सम्बंधों का एक जटिल जाल बना रहता है। ये सम्बंध तीन प्रकार के होते हैं। पहला वह जिसमें केवल एक जीवधारी को लाभ होता है और दूसरे को हानि, जैसा कि परजीवी और पोषक के रिश्ते में होता है। दूसरा प्रकार वह होता है जिसमें एक को लाभ तो होता है किंतु दूसरे को हानि भी नहीं पहुंचती। तीसरा प्रकार वह है जिसमें दोनों जीवधारियों को लाभ होता है। इस तीसरे प्रकार के सम्बंध को सहजीविता (symbiosis) कहते हैं। चार बहुत अलग-अलग प्रकार के जीवधारियों की सहजीविता का एक अनोखा उदाहरण पिछले दिनों सामने आया है।

दक्षिण-अमरीका के घने जंगलों में एक अजीबो-गरीब जंतु पाया जाता है। इसे अंग्रेज़ी में टू-टोड स्लॉथ कहते हैं यानी दो उंगलियों वाला स्लॉथ। स्लॉथ का अंग्रेज़ी में मतलब होता है आलस्य या सुस्ती। यह जंतु आलस्य का जीता-जागता उदाहरण है। यह पेड़ों की टहनियों पर उलटा लटका रहता है और बहुत ही धीरे-धीरे एक-एक कदम बढ़ा कर चलता है। इस सुस्त चाल और जीवनशैली के कारण ही इसे स्लॉथ यानी आलस्य की मूर्ति नाम दिया गया है। इसके नाम का पहला भाग, यानी टू-टोड कुछ भ्रामक है। इसका अर्थ तो होता है कि इसके पैरों पर दो उंगलियां हैं। किंतु वास्तव में इसके पिछले पैरों पर ही दो उंगलियां होती हैं और अगले पैरों पर तीन-तीन होती हैं। इस स्लॉथ के शरीर पर बालों का घना आवरण होता है और इन बालों में हरी काई की एक और फफूंद की एक प्रजाति रहती है। इनके अलावा पतंगों की एक विशिष्ट प्रजाति भी इनके बालों को अपना आशियाना बनाती है जहां इन्हें भोजन और आश्रय मिल जाता है।

पेड़ों की पत्तियां, फल-फूल और तने की छाल स्लॉथ का प्रमुख भोजन होता है, किंतु यदि कोई छोटी गिलहरी हाथ आ जाए तो ये उसे भी खा लेते हैं। इन सबके अलावा इनके भोजन का एक प्रमुख स्रोत शरीर पर लगी हरी काई होती है। जब कोई स्लॉथ अपने शरीर को चाट कर साफ करता है तब वह काई को भी खाता है। इस काई से इसे वसा मिलती है जो पेड़ों की पत्तियों में आवश्यक मात्रा में नहीं होती। शरीर के लिए आवश्यक पानी इन्हें पत्तियों से ज़रूर मिल जाता है। इनकी सुस्त चाल और जीवनशैली के कारण इनके शरीर की सारी क्रियाएं अत्यंत धीमी गति से चलती रहती हैं। स्वाभाविक है कि इनकी पाचनक्रिया भी धीमी होती है और भोजन का पाचन होने में कई दिन लग जाते हैं। स्लॉथ के घने बालों में वर्षा जल की बूंदें अटक जाती हैं। इस पानी में काई खूब पनपती है। जब पतंगे मरते हैं तब फफूंद इनके शरीरों का अपघटन करके उन नाइट्रोजन युक्त पदार्थों को मुक्त कर देती है जो काई के लिए आवश्यक होते हैं। इस प्रकार, स्लॉथ, काई, फफूंद और पतंगों की सहजीविता का अनोखा चक्र चलता रहता है।

टू-टोड स्लॉथ का लगभग सारा जीवन पेड़ों के ऊपर ही बीतता है क्योंकि यदि यह पेड़ से नीचे उतर आए तो अपनी धीमी चाल के कारण परभक्षियों का आसानी से शिकार बन सकता है। फिर भी रोचक बात यह है कि सारे टू-टोड स्लॉथ सप्ताह में एक बार नियमित रूप से पेड़ से नीचे उतरते हैं, ज़मीन में एक गढ्ढा करते हैं और उसमें मल-त्याग करते हैं। ऐसा करने में वे भारी खतरा उठाते हैं क्योंकि पेड़ से नीचे उतरने पर वे किसी भी कुत्ते, लोमड़ी या अन्य परभक्षी का शिकार बन सकते हैं।

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

वैज्ञानिकों के लिए यह एक जिज्ञासा का विषय था कि ये जंतु ऐसा खतरा क्यों उठाते हैं जबकि वे पेड़ों पर रहने वाले अन्य जंतुओं के समान ऊपर से ही मल त्याग कर सकते हैं। अमरीका के विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जोनाथन पाउली और उनके सहयोगियों ने टू-टोड स्लॉथ की आदतों का गहराई से अध्ययन किया और जीवजगत में पाए जाने वाली सहजीविता के एक अनोखे उदाहरण पर से परदा उठाया। उनके शोधकार्य की रिपोर्ट प्रोसिडिंग्स ऑफ दि रॉयल एकेडेमी नामक अत्यधिक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्रिका में प्रकाशित हुई है।

पाउली ने पाया कि नर और मादा पतंगे समागम तो स्लॉथ के बालों में करते हैं किंतु मादा अंडे स्लॉथ के ताज़े मल में देती है ताकि अंडों से निकलने वाली इल्लियों को भोजन मिल सके। गौरतलब है कि कई प्रकार के कीट (जिनमें मक्खी भी शामिल है) बड़े जानवरों के मल में अंडे देते हैं। जब कोई स्लॉथ मल त्याग करने के लिए पेड़ से उतर कर ज़मीन पर आता है तब उसके शरीर पर स्थित गर्भवती पतंगा मादाएं भी नीचे उतर कर स्लॉथ के मल में अंडे देती हैं। इन अंडों से निकलने वाले बच्चे बड़े होने पर उड़ कर पेड़ पर पहुंच जाते हैं और स्लॉथ के बालों में रहने लगते हैं। यह संभव है कि चूंकि स्लॉथ अपने पेड़ के पास ही मल त्याग करते हैं, नीचे उड़ कर आने वाले पतंगे उन्हीं मादाओं के संतानें हों जो उस स्लॉथ के शरीर से उतर कर गईं थीं।

चूंकि सहजीविता के चक्र में पतंगे उतनी ही महत्वपूर्ण कड़ी हैं जितनी काई और फफूंद, अपने शरीर पर पतंगों की संख्या बनाए रखना स्लॉथ के लिए ज़रूरी होता है। यही कारण है कि वे ज़मीन पर उतरने का खतरा मोल लेते हैं।

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

कृषि-संचार की भारतीय कृषि में उपयोगिता

कृषि-संचार की भारतीय कृषि में उपयोगिता का अंदाजा इस बात से लगा सकते है कि देश के 50 प्रतिशत से अधिक किसानो ने कृषि-संचार का उपयोग तक नही किया है. कृषि संचार- जो विज्ञान संचार का एक उपवर्ग हैं- को कृषि विशेषज्ञयो, कृषि विस्तार अधिकारी और स्वतंत्र लेखको द्वारा किया जाता है, वहीँ कृषि-पत्रकारिता में कृषि खोजो और उनके किर्यान्वयन पर जनता और समाज कि आवाज को सरकर तक पहुंचाने का काम हैं। कृषि-संचार का पहिला काम मौसम परिवर्तन के आधार पर किसानो को सुचना देने का होगा. हालाँकि सरकारी नीतियों में इसकी अनुपस्थिति से किसानो ओर कृषि - रिसर्च के बीच एक अंतर बन गया है, यह एक छूटा हुआ एरिया हैं. अतः कृषि-संचार और कृषि-पत्रकारिता, जो पहले से ही देश में धीमे गति से काम कर रहे है, को फिरसे एक नए रूप ' मोबिलाइसिंग मास मीडिया सपोर्ट फॉर शेयरिंग एग्रो- इनफार्मेशन' में 2009 से राष्ट्रीय कृषि अनुसन्धान परिषद , नई दिल्ली, द्वारा 10 कृषि अनुसंधान केन्द्रों पर देश भर में शुरु किया है। इस परियोजना का मुख्य उद्देश किसानो को नई कृषि-शोधो को जनसंचार के माध्यम से पहुँचाने से है.

देश में लगभग 263 लाख किसान है. कृषि में हो रहे कोई भी नुक्सान को सीधे-सीधे जलवायु परिवर्तन से नहीं देखते, पर ?? प्रतिशत किसानो का कहना था, की उनकी फसल-वर्वाद वे-मौसम वारिश, सुखा, ओर बाढ़ की वजह से हुई है. 1994 में डी. जी. राओ और एस. एन. सिन्हा ने बताया जलवायु परिवर्तन किसानो को क्षति पहुंचा रहा है. भारतीय कृषि में यदि आज उपस्थित कार्बोन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा दो-गुनी हो जाएं, तो जलवायु परिवर्तन के चलते धान और गेहूं की पैदावार कृमशाः 28 से 68 प्रतिशत तक (कार्बोन-डाई ऑक्साइड फ़र्टिलिसशन के हिसाब से) प्रभावित हो सकती है. तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से चावल की उपज में लगभग 0.75 टन/हेक्टेयर होने कि संभावना है. कम उपज वाले तटीय क्षेत्रों में लगभग 0.06 टन/ हेक्टेयर तक की कमी हो सकती है. 0.5 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ने से लगभग 10 प्रतिशत तक पैदावार में कमी अधिक उपज देने वाली क्षेत्रों जैसे, पंजाब, हरयाणा, और उत्तर प्रदेश में हो सकती है. हर वर्ष कुछ 2.7 लाख लोगो का जीवन समुद्र तटवर्तीय इलाकों में जल-स्तर में वृद्धि होने से प्रभावित होता रहा है. ऐसे में किसानो से अपेक्षा है कि वे जलवायु परिवर्तन के चलते 2030 तक कृषि की पैदावार बिना तकनीकि सहायता से बढ़ाये। हाल यह है की जलवायु परिवर्तन में होने वाले बदलाव को समझने के लिये देश को बाहरी रिसर्च सेंटर्स पर निर्भर रहना पड़ता है. इस समस्या से पार पाने के लिये भारत में क्ष्ध्क्क जैंसे केन्द्रों को स्थापित करना होगा।

मौसम विभाग वारिश के वारे में पहले से जानकारी देने में सक्षम है. बहुत कम लोग शायत जानते हैं कि भारतीय मौसम विभाग ओलावृष्टि की पूर्ववर्ती जानकारी देने में सक्षम नहीं है. ख़राब मौसम के चलते, इस वर्ष मध्य प्रदेश में 1 मिलियन टन गेहूं,1 मिलियन टन चना, 3 लाख मिलियन टन दाल और अन्य फसलों (1,50,000 टन) वर्वाद हो चुकी है। राहत के तौर पर, गेहूं में मध्यप्रदेश में किसानो 15,000 रुपए प्रति हेक्टेयर के हिसाब से, महराष्ट्र में 10,000, 15,000, और 25,000 मुआवजा राशी आर्थिक सहायता के रूप में काम , कृमशाः वार्षिक, आर्चिड और सिंचित फसलों के लिये देना का अस्वाशन किसानो से

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

किया है. जबकि राजस्थान, पंजाब, हरयाणा, उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश में अभी किसानो को मुआवजा मिलना बाकि है, क्यूंकि वहां पर 'फसल-कटाई पद्धति' को मानक मानकर फसल हानि को क्षतिपूर्ति के रूप में को किसानो में बांटा जाएगा। फसल-क्षति का जो कोइ भी तरीका हो; सरकर फसल क्षति को समय रहते किसानो में दे दिया जाये तो ये उनके लिये बहुत बड़ी मदद होगी. देश में 200 करोड़ रूपए सिर्फ फसल छती को पुरा करने मैं चला गया है,

कृषि-संचार और कृषि-पत्रकारिता में अंतर है और उनका किसानो पर कितना असर पड़ता है हमें हाल के वर्षों के कुछ महत्वपूर्ण डेटा मिले। कृषि एक्सपर्ट्स के अनुसार मध्य प्रदेश में गेहुं कि उपज 26 क्विंटल/ एकड़ है, जो अच्छे मौसम में कुछ-एक किसान द्वारा ही निकला जा सकता है. औसतन, गेहूं 18-20 क्विंटल/ एकड़ ही निकलता है, जो असल उपज से 6-8 क्विंटल/ एकड़ कम है. इस वर्ष वे-मौसम वारिश और ओलाबृष्टि ने गेहूं कि इसी की उपज को 10-14 क्विंटल/ एकड़ तक कर दिया है, जो सरकारी औसत से 6-8 क्विंटल/एकड़ एवं किसानो के असल औसत से 16-12 क्विंटल/ एकड़ तक कम है. सिर्फ़ किसान के औसत से ही इस वर्ष लगभग 9300-/ रूपए प्रति एकड़ रूपए का नुक्सान किसानो को है. सरकार ने मुआवजा कि राशी 7,500/ रूपए प्रति एकड़ दी जाने का आश्वाशन दिया है, जिसमें किसानो को 800 रूपए प्रति एकड़ का नुक्सान मुआवजा देने के बाद भी है. यहाँ पर कृषि संचार, जो सरकार के तंत्र द्वारा किय गया है, को संतुलित करने के लिये कृषि पत्रकारिता की सख्त आवशयकता है ताकि किसानो की बात और उनकी कृषि का असल हाल सरकर के समक्ष ठीक- ठीक रखा जा सके.

दुसरी तरफ, सोयाबीन फसल है, जो विगत 3-4 सालों से मध्य-प्रदेश में ख?ाब हो रही है. सोयाबीन फसल को पब्लिक-प्राइवेट सोयाबीन सेंटर्स वर्ष के शुरू में ही अच्छा होने का अनुमान लगा लेते है जो किसान के लिये तब बुरा होता जब वे इस पर आँख बंध करके विश्वास करने लगते है. और बुरा तब होता है, जब कृषि-संचार उनकी इस फसल कि भविष्यवाणी को आधार मानकर संचार करती रहती है एवं किसान कि हुई फसल-वर्वादी को नकारते है. इसका कारण है कृषि-पत्रकारिता किसानो की दशा को ठीक से माप नहीं पाती. पत्रकारों के सीमित समय देने के कारण फार्म-रिपोर्टिंग ठीक से नहीं कर पाती फलस्वरूप कृषि-संचार कि फसल-भविष्यबाणी को ही सर्वापरि मान लिया जाता है. राष्ट्रीय सतर पर इसे चुनौती देने कि जरूरत हैं, जो स्थानीय मॉस मीडिया के द्वारा भलीभांति की जा सकती और उम्मीद की जाती है कि वे फॉर्म-रिपोर्टिंग यथावत करें ताकि देश-दुनिया को इनकी खबर सही-सही लगे। इस वर्ष मुआवजा मिल रहा है.

बिल ब्रेसों कहते है एक किसान को तीन चीजे से मर सकता है:बिजली कि गड़गड़हट से, ट्रैक्टर में अधिक रोलिंग से, और बुढ़ापे से. जलवायु परिवर्तन के तहत 'खराब मौसम' चौथा कारक होगा जो कृषि को बहुत हद तक प्रभावित कर सकता है, जो आगे चलकर उनकी मौत का कारण भी बन सकता है. फरवरी-मार्च में ओलावृष्टि ने गेहूं, दलहन , गन्ना , चना , सरसों , मक्का , मूंगफली , अंगूर , पपीता , आम, केला , और सब्जियों को मध्य प्रदेश समेत महाराष्ट्र, राजस्थान , पंजाब, हरियाणा , उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश में लगभग 40-60 प्रतिशत तक वर्वाद कर दिया है।

कुछ और ऐसे ही कारणों कि वजह से देश में लगभग 2,50,000 किसानो ने देश में आत्महत्या कर चुके है, जिसमें से 15 प्रतिशत महिलाएं थी। फिलहाल देश में 11 करोड़ किसान रह गए है, जो 2011 में 12 करोड़ किसान थे। कुछ और सर्वे बताते है कि 76 प्रतिशत किसान खेती नहीं करना चाहते है, वही 61 प्रतिशत का कहना है, की अगर वे बड़ी जगहों पर रहते तो उच्च-शिक्षा, स्वाथय, और रोजगार के अवसरों का लाभ उठाना चाहेंगे। समय है कृषि-संचार ओर कृषि-पत्रकारिता पर काम करने कीं, ताकि किसान और कृषि का विकास हो सके .

अनिल सिंह सोलंकी
होशंगाबाद, म.प.

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस

यह सदी विज्ञान की सदी है। इस सदी में अद्वितीय प्रौद्योगिकीयों के कारण आई सामाजिक आर्थिक क्रांति आई है। पिछले दशकों के दौरान विकसित अनोखी प्रौद्योगिकीयों के उपयोग के चलते ही मानव ने आज विकास के नए आयामों को छुआ है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में निरंतर प्रादलाव आ रहा है और इस प्रादलाव के कारण दुनिया भर में परिवर्तन हो रहा है। आज यह प्रादलाव ज्ञान आधारित समाज के विकास में अपनी महत्वपूर्ण निभा रहा है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस योगदान को देखते हुए प्रत्येक साल 11 मई को राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस मनाया जाता है। यह दिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उन्नति का उत्सव दिवस है। स्वतंत्रता के प्राद से ही भारत ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी की दिशा में आगे कदम प्राढाए हैं। हमारे स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू एवं उनके प्राद अनेक लोगों ने भारत को आत्मनिर्भर देश प्रानाने के लिए देश में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता पर जोर दिया।आज भारत वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में कुछ प्रमुख देशों में शामिल है। विश्व के प्रादलते औद्योगिक परिदृश्य में, प्राुनियादी अनुसंधान से लेकर उन्नत अनुप्रयोगों तक भारत की प्रौद्योगिकी क्षमता ने देश के विकास और आधारभूत विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है।

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस, भारत की कुछ ऐसी प्रमुख प्रौद्योगिकियों का प्रतिनिधित्व करता है जिसके कारण भारत वैज्ञानिक अनुसंधान और प्रौद्योगिकी से समृद्ध देशों में शामिल हो सका है। 11 मई, 1998 को भारतीय वैज्ञानिकों ने सफलतापूर्वक राजस्थान के पोखरण में नाभिकीय परिक्षण किया था। इस नाभिकीय परिक्षण को ऑपरेशन शक्ति के नाम से भी जाना जाता है जिसमें पांच नाभिकीय प्रामों की ृंखला का विस्फोट कर परिक्षण किया गया था । इन प्रामों में से एक संलयन और तीन विखंडन प्राम थे। इस सफलता ने भारत को नाभिकीय शक्ति से संपन्न देशों की श्रेणी में खडा कर दिया। इसी दिन भारत का पहला स्वदेशी वायुयान हंस तृतीय की उडान का प्रांगलौर में सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया । इसी दिन त्रिशुल मिसाइल का सफल फायरिंग परीक्षण भी संपन्न हुआ था। इन प्रौद्योगिकीयों का सफलतापूर्वक परिक्षण करने के कारण प्राद में इस विशेष दिन को यानी 11 मई को राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस के रूप में मनाए जाने का फैसला लिया गया।

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस, हमारी वैज्ञानिक कुशलता, प्रौद्योगिकी रचनात्मकता और टिकाऊ विकास के लिए विज्ञान, समाज एवं उद्योगों के समन्वय का प्रतीक है। यह दिन प्रौद्योगिकी नवाचारों और उनका सफल आर्थिक उपयोग के सम्मान का है। प्रौद्योगिकी नवाचारों के लाभ समान्य जनता तक पहुंच कर ओर भी महत्वपूर्ण हो जाता है। यह दिन ऐसे व्यक्तियों के सम्मान और पहचान का है जिनके योगदान के कारण देश के विज्ञान और प्रौद्योगिकी जगत को ख्याति प्राप्त हुई हो। इस दिशा में पहल करते हुए भारत का प्रौद्योगिकी विकास प्रोर्ड हर साल राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस के अवसर पर राष्ट्रीय सम्मान प्रदान करता है। इस सम्मान के अंतर्गत प्रौद्योगिकी को विकसित और उपलप्राध कराने वाले व्यक्ति को 10 लाख रूपए एवं सम्मानपत्र प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रौद्योगिकी प्रोर्ड ने प्रौद्योगिकी आधारित उत्पादों का सफल व्यवसायिक उपयोग करने वाली तीन श्रेष इकाइयों को

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पांच लाख रुपए एवं ट्राफी वाले एक नए अवार्डों को भी घोषित किया है।

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस, सभी नागरिकों को महत्वपूर्ण संदेश देता है। भारत में अनेक प्रतिभाएं है जिनका उपयोग प्रौद्योगिकिय नवाचारों के लिए किया जा सकता है। आज विश्व ऐसी प्रौद्योगिकीय नवाचारों के विकास की ओर देख रहा है जो सुनहरे भविष्य के अनुरूप हों। राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस हम सभी के लिए गर्व का विषय होने के साथ ही प्रौद्योगिकी विकास के उत्सव मनाने के साथ ही इस विरासत को आगे प्रढाने के लिए प्रेरित करता है।

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजे

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

लोकसभा में पहले वैज्ञानिक मेघनाथ साहा

चक्रेश जैन

बासठ वर्ष पहले यानी 1951-52 में लोकसभा के प्रथम चुनाव में वैज्ञानिक मेघनाद साहा निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव मैदान में उतरे। उन्होंने पश्चिम-उत्तर कलकत्ता (अब कोलकाता) से नामांकन-पर्चा भरा। यह वही कलकत्ता है, जो उन दिनों वैज्ञानिकों की कर्मभूमि रहा है। वे यहां से भारी मतों से विजयी हुए। उनके निर्वाचित होने पर वैज्ञानिकों सहित सभी को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। मेघनाथ साहा मूलतः वैज्ञानिक थे और उनकी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय जगत में ख्याति भौतिकीविद के रूप में थी। उनकी जीत पर सबसे अधिक खुशी जिन वैज्ञानिकों ने जाहिर की, उनमें महान वैज्ञानिक एवं विज्ञान संचारक जेबीएस हाल्डेन सम्मिलित हैं।

वैज्ञानिकों के लिए लोकसभा चुनाव जीतना तब भी एक चुनौती था। आज भी एक चुनौती है। पहली बात, वैज्ञानिक चुनाव में हिस्सा नहीं लेते। दूसरा, चुनाव जीतने के राजनीतिक गुर उन्हें मालूम नहीं होते। यह सच है कि हमारे वैज्ञानिक सामाजिक जीवन से अलग-थलग रहते हैं। प्रायः शोध की दुनिया में खोए रहते हैं। उनकी लोकप्रियता फिल्म, रंगमंच, खेल और पेशेवर राजनेताओं जैसी नहीं होती। एक बात और वे जनसभाओं में धुआंधार भाषण देने और मतदाताओं को अपने पक्ष में करने की कला में भी पारंगत नहीं होते। लेकिन इस दृष्टि से मेघनाथ साहा अन्य वैज्ञानिकों से सर्वथा भिन्न थे। उन्हें मालूम था कि अपनी बातों को मनवाने का यथोचित और सशक्त मंच लोकसभा है। जब साहा पहली बार संसद भवन पहुंचे तो एक सांसद ने टिप्पणी करते हुए कहा कि वैज्ञानिकों को अपनी प्रयोगशाला में रहकर ही रिसर्च करनी चाहिए। इस पर उनका सहज उत्तर था - मैं संसद भवन को भी अपनी प्रयोगशाला मानता हूं। उनके इस उत्तर से कुछ सांसद भौंचक रह गए। मेघनाद साहा ने लोकसभा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ वैज्ञानिक मुद्दों को ज़ोरदार ढंग से रखा और अपनी अलग पहचान बनाई।

उनका विद्यार्थी जीवन से ही सामाजिक गतिविधियों से सरोकार रहा। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय और जगदीशचन्द्र ब्रसु जैसे अध्यापकों ने उनके विद्यार्थी जीवन को संवारा और नई ऊंचाइयों तक पहुंचाने में अहम योगदान किया था। साहा ने युवा अवस्था में ग्रामीण इलाकों में निकटता से गरीब्री देखी,जिसका गहरा असर उनके मन पर पडा था। उनका मानना था कि सभी समस्याओं का एक प्रमुख कारण आर्थिक परेशानियां हैं,जिनका समाधान वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है।

मेघनाद साहा को योजना आयोग का सदस्य मनोनीत किया गया। उन दिनों वैज्ञानिकों के लिए यह ब्रड़ा और दुर्लभ सम्मान था। उन्होंने योजना आयोग में देश की पंचवर्षीय योजनाओं में विज्ञान के समावेश पर विशेष जोर दिया। साहा ने विदेशों में विज्ञान के उपयोग से समाज में लोगों के जीवन स्तर में परिवर्तन देखा था। वे चाहते थे ऐसा परिवर्तन हमारे यहां भी दिखाई दे।

मेघनाद साहा ब्रहुआयामी प्रतिभा के वैज्ञानिक थे। वे खगोल भौतिकी के विद्वान थे। उन्होंने तापीय आयनन के सिद्धांत की मौलिक व्याख्या की। 1952 में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् ने भारतीय कैलेन्डर समिति ग[illegible]त की,जिसका अध्यक्ष मेघनाद साहा को ब्रनाया गया। उन्होंने शक संवत कैलेण्डर के निर्माण में अहम योगदान किया। साहा ने देश में न्यूक्लियर फिजिक्स को ब्रढावा देने के लिए 1948 में कोलकाता में नाभिकीय भौतिकी संस्थान की स्थापना की।

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

उनकी विज्ञान समाचारों में विशेष रुचि थी। कोलकाता में 1934 में इंडियन साइंस न्यूज एसोसिएशन की स्थापना की गई,जिसके प्रथम सचिव मेघनाद साहा थे। वे इसी वर्ष विज्ञान कांग्रेस एसोसिएशन के जनरल प्रेसीडेंट चुने गये। उन्होंने इस मंच से नदियों में प्बाढ और अखिल भारतीय विज्ञान अकादमी के ग□न पर विशेष जोर दिया।

जीवन के आरंभिक वर्षों में साहा और सत्येंद्र प्बोस ने मिलकर अनुसंधान किया, लेकिन उत्तरार्द्ध में साहा लोकसभा और प्बोस राज्यसभा में पहुंच गये। राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा में विज्ञान,कला,खेल,साहित्य आदि क्षेत्रों की प्बारह प्रतिभाओं को नामजद किया जाता है। सत्येंद्र नाथ प्बोस को 1952 में राज्यसभा के लिए मनोनीत किया गया था।

1951 से अभी तक लोकसभा चुनाव के इतिहास से स्पष्ट हो रहा है कि मेघनाद साहा ने एक नया इतिहास रचा और एक विख्यात वैज्ञानिक और लोकप्रिय सांसद दोनों रूपों में अपनी पहचान प्बनाई। उन्होंने लोकसभा के विभिन्न सत्रों और अधिवेशनों में सक्रिय रूप में हिस्सा लिया। उन्होंने सदन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का पुरजोर समर्थन करते हुए कहा था कि वैज्ञानिकों को आमजन की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए सार्वजनिक जीवन से जुडना चाहिये।

वास्तव में मेघनाद साहा अकेले वैज्ञानिक थे,जिन्होंने पहली प्बार लोकसभा में पहुंच कर वैज्ञानिकों की अलग□थलग रहने वाली छवि को खंडित किया। उन्होंने वैज्ञानिक प्बिरादरी को एक संदेश यह दिया कि अच्छे,लोकप्रिय और प्रतिष्□त वैज्ञानिकों के लिए लोकसभा चुनाव चुनौती नहीं है। दूसरा यह कि हमारे वैज्ञानिकों को सामाजिक उत्तरदायित्वों से जुडना चाहिये। तीसरा, संसद में जनसामान्य से जुडे वैज्ञानिक मुद्दों को उ□ाने के लिए वैज्ञानिक नेतृत्व को प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□

चक्रेश जैन

ई□मेल : रप्रींतर्मी 2013 / हउंपसण्प्रवउ